अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-38, अंक-4, 1-15 अक्टूबर, 2014

गांधी-जयप्रकाश-जयंती

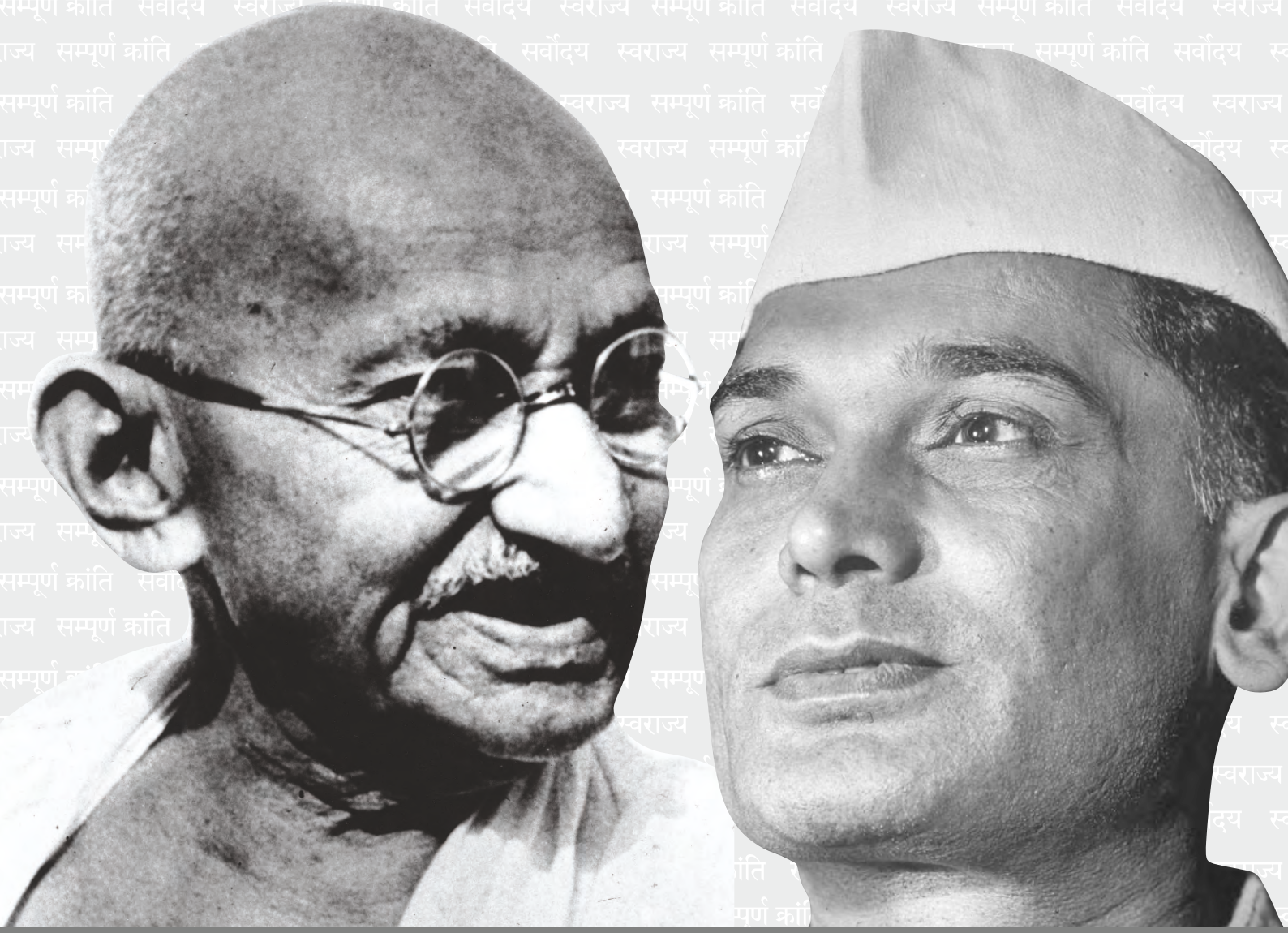

गांधी ज्ञान से दुनिया में स्वर्ग

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष : 38, अंक : 04, 1-15 अक्टूबर, 2014

संपादक मंडल

डॉ. रामजी सिंह — भवानी शंकर 'कुसुम'
बिमल कुमार — अशोक मोती

संपादक — बिमल कुमार — मो. : 9235772595

कार्यकारी संपादक — अशोक मोती — मो. : 7488387174

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	पांच रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये
खाता संख्या	:	383502010004310
		IFSC No. UBIN-0538353

विज्ञापन दर

पूरा पृष्ठ	:	2000 रुपये
आधा पृष्ठ	:	1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ	:	500 रुपये

इस अंक में...

1. गांधी ज्ञान से दुनिया में... 2
2. गांधी-जे.पी. की विरासत... 3
3. महात्मा गांधी इतिहास की एक... 4
4. गांधी-विचार : जैसा मैंने समझा... 5
5. मेरे सपनों का भारत... 7
6. 'गांधी-विचार' क्रांति का साधन कैसे... 8
7. संपूर्ण क्रांति, सर्वोदय और वर्ग-संघर्ष... 10
8. विनोबा को देखा तो...जैसे गांधी को... 12
9. गो-रक्षा... 14
10. गोरा बनाम गांधी बनाम गॉड... 16
11. गतिविधियां एवं समाचार... 18
12. गांधी-गोलवलकर वार्ता... 19
13. कविताएं... 20

'सर्वोदय जगत' में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनके साथ सर्व सेवा संघ और संपादक मंडल का सहमत होना जरूरी नहीं है।

'गांधी ज्ञान' से दुनिया में स्वर्ग ला सकते हैं!

❑ विनोबा

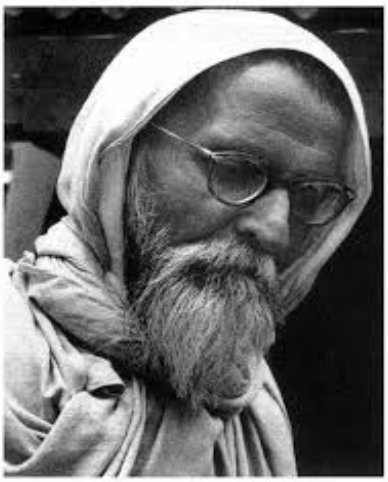

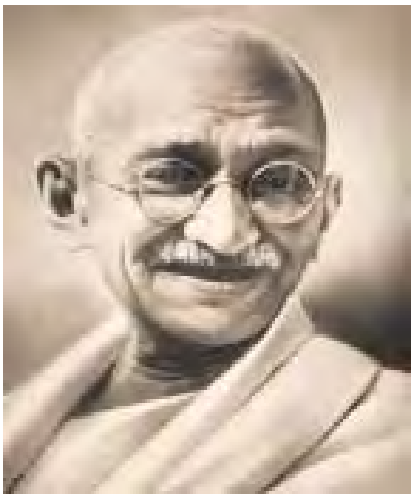

'यह *गांधी ज्ञान* क्या चीज है, जरा समझने की जरूरत है। अपने देश में आत्मज्ञान का उदय प्राचीनकाल में ही हुआ था और उसकी परम्परा आज तक यहां अखंडित चली आ रही है। विज्ञान का भी उदय अपने यहां हुआ था। पर उसकी परम्परा अखंडित नहीं चली। आधुनिक जमाने में विज्ञान का विकास पश्चिम में हुआ। *आत्मज्ञान और विज्ञान के संयोग से सामूहिक जीवन का जन्म हुआ है। उसी को गांधी ज्ञान कहते हैं।*

मेरा दृढ़ विश्वास है कि उसी से दुनिया का भला होने वाला है। इतना ही नहीं, उससे हम दुनिया में स्वर्ग ला सकते हैं। जैसे हाइड्रोजन और ऑक्सीजन मिलकर पानी बनता है, वैसे ही आत्मज्ञान और विज्ञान मिलकर सर्वोदय या साम्ययोग बनता है।

× × ×

'बापू का प्रेम और विश्वास मैंने बहुत पाया है। मैंने भी अपना सर्वस्व उनके चरणों में समर्पित किया था। मेरी अंतरात्मा गवाही देती है कि बापू ने जो अहिंसा का, प्रेम का मार्ग दिखाया है, उस पर चलने की मैंने पूरी-पूरी कोशिश की है। मैंने प्रयत्नों की पराकाष्ठा कर दी। एक क्षण भी ऐसा याद नहीं कि मैं असावधान रहा हूं। बापू के जाने के बाद मैं बापू का ही काम कर रहा हूं, इसमें मुझे रत्तीभर शंका नहीं है। इस काम में मेरे हृदय में अपार आनन्द होता है। और उसमें मैं बापू को निरंतर अपने साथ देखता हूं। मैं मानता हूं कि मेरे चिन्तन में बापू का साररूप अंश है। बापू के समय की अपेक्षा आज बहुत अधिक मैं उनके सान्निध्य में हूं। उन्होंने जो कुछ कहा है, उस संबंध में चिन्तन करने में आज मुझे उनकी ओर से जितनी मदद मिलती है उतनी और किसी से नहीं मिलती।

× × ×

सर्वोदय में जीवन के दो टुकड़े नहीं बनते। व्यक्ति के विरुद्ध समाज खड़ा नहीं होता, न समाज के विरुद्ध व्यक्ति। व्यक्तिगत जीवन के विरुद्ध सामाजिक जीवन और सामाजिक जीवन के विरुद्ध व्यक्तिगत जीवन खड़ा नहीं होता। न सेवा और चिन्तन ऐसे अलग-अलग टुकड़े होते हैं।'' *सर्वोदय में सेवा ही चिन्तन और चिन्तन ही सेवा होती है।* ❑

संपादकीय

गांधी-जेपी की विरासत

गांधीजी का स्मरण हम इसलिए नहीं करते हैं कि वे एक महान आत्मा थे। यह तो वे थे ही। किन्तु क्रांतिकारी उनका स्मरण इस कारण करते हैं, क्योंकि वे अन्याय व शोषण की हर परिस्थिति के खिलाफ, हर व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष करने की प्रेरणा देते रहते हैं। पूंजीवादी युग के हर स्वरूप को बदलने व उसका विकल्प प्रस्तुत करने का आधार देते हैं।

गांधीजी इस लड़ाई को आर्थिक व्यवस्था या राजनीतिक व्यवस्था परिवर्तन तक सीमित नहीं मानते थे। उनकी दृष्टि में यह लड़ाई उस तथाकथित सभ्यता के खिलाफ थी, जो योरोप केन्द्रित थी तथा विज्ञान, आधुनिकता एवं लोकतंत्र के नाम पर दुनिया भर में नये प्रकार के वर्चस्व को स्थापित करने के लिए सभ्यता के नाम पर थोपी जा रही थी।

किसी भी सभ्यता की सबसे बड़ी पहचान यह होगी कि उस समाज में मनुष्य की उत्पादक-कार्य करने की प्रेरणा क्या होगी तथा अपने जीवन को परिपूर्ण बनाने की प्रेरणा क्या होगी। पूंजीवाद में इस प्रेरणा का स्रोत लाभ एवं लोभ है तथा उपभोक्ता के रूप में अधिकाधिक उपभोग एवं संग्रह है। ये दोनों प्रवृत्तियां राक्षसी प्रवृत्तियां हैं। इसी कारण गांधीजी ने उस सभ्यता को शैतानी सभ्यता कहा। प्रेम, करुणा एवं सहकार प्रेरित समाज ही सभ्य समाज कहलाने का हकदार बन सकता है।

दूसरी बात यह कि पूंजीवाद के अंतर्गत आक्रामकता, प्रभुत्व एवं शोषण को व्यवस्था का अंग बना दिया गया। अर्थात् ऐसी व्यवस्था बना दी गयी, जिसमें आक्रामकता, दमन, शोषण व अन्याय प्रकट नहीं दिखते हैं, लेकिन जीवन-व्यापार का अंग बन गये। इसके दो प्रमुख माध्यम बने—एक तो शीर्षमुखी केन्द्रीकृत श्रेणीबद्ध व्यवस्थाएं तथा दूसरी पूंजीवादी बाजार की व्यवस्थाएं। विज्ञान, लोकतंत्र एवं आधुनिकता के नाम पर इन व्यवस्थाओं को अधिकाधिक मजबूत किया गया।

गांधीजी ने न केवल इनका विरोध किया, बल्कि इनके जो केन्द्र विकसित हो रहे थे, अर्थात् दुनिया भर के संसाधनों व श्रम के शोषण व दोहन के केन्द्र—नगरीय व्यवस्था का भी विरोध किया। गांधीजी ने विरोध भी किया और विकल्प भी दिया। शरीर-श्रम, स्वदेशी, ट्रस्टीशिप, ग्राम गणराज्य (ग्राम स्वराज्य) आदि विचार इसके सूत्र हैं, जिनका आज भी उतना ही महत्त्व है।

सन् 1945 के बाद दुनिया भर में जो राष्ट्र स्वतंत्र हुए, उन्होंने पूंजीवाद या राज्य पूंजीवाद या इनका मिश्रित पूंजीवाद का मॉडल ही अपनाया। केवल सर्वोदय की जमात, गांधीजी द्वारा दिखाये गये मार्ग पर आगे बढ़ती गयी। आजादी के बाद के प्रारम्भ के दौर में ऐसा लगा था कि राज-सत्ता के साथ गांधी की धारा का टकराव नहीं होगा क्योंकि राजसत्ता में वे लोग गये थे, जिन्होंने गांधीजी के नेतृत्व में आजादी की लड़ाई में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। लेकिन 25 वर्ष बीतते-बीतते यह स्पष्ट हो गया कि गांधी की धारा के साथ राजसत्ता का एवं पूंजीवादी बाजार की सत्ता का टकराव अपरिहार्य है।

यह अपरिहार्य टकराव प्रकट हुआ, सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन के रूप में। लोकनायक जयप्रकाश नारायण की अगुवाई में हुए सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन ने अहिंसक क्रांति के नये आयाम खोल दिये। लोकसत्ता के निर्माण का माध्यम लोक संघर्ष, लोक संगठन एवं लोक-रचना बनेंगे, इसकी सम्भावना एक बार पुनः प्रकट हुई। इसके बाद से लोक-संघर्ष, पार्टियों के दायरे के बाहर खड़े होते रहे हैं।

आज के संदर्भ में दो बातें महत्त्वपूर्ण हैं। एक तो यह कि लोक संघर्ष, पार्टी दायरे के बाहर तो हो रहे हैं, लेकिन लोक-संगठन व लोक-सत्ता निर्माण के माध्यम नहीं बन पा रहे हैं। क्रांतिकारी आंदोलनों की प्रक्रिया में एक बड़ी क्रांति यह लानी होगी कि हर आंदोलन श्रेणीबद्ध इकाईयों का निर्माण करने के बजाय लोक-संगठन व लोक-सत्ता के निर्माण का माध्यम बनता जाये। सर्वोदय आंदोलन इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है।

दूसरे यह कि आज की पूंजीवादी आर्थिक सत्ता एवं पूंजीवादी बाजार प्रमुख रूप से जल-जंगल-जमीन व खनिजों के दोहन व शोषण पर अपना विकास का मुखौटा प्रस्तुत कर रहा है। अतः क्रांतिकारी आंदोलनों को अपनी मुख्य शक्ति जल-जंगल-जमीन व खनिज के दोहन-शोषण को रोकने में, इसे बाजार के दायरे में जाने से रोकने पर लगानी होगी। और इस क्रांतिकारी आंदोलन का जन आधार इन प्राकृतिक स्रोतों पर जीवन-यापन करने वाले परम्परागत समुदाय ही बन सकते हैं। उन्हीं में नये कैडर निर्माण के कार्य, सघन क्षेत्र के कार्य एवं संघर्ष के कार्य को प्रमुखता देनी होगी। गांधी-जेपी की विरासत को बढ़ाने का युग धर्म यही है।

विमल कुमार

आवश्यक सूचना

'सर्वोदय जगत'

के सभी सुहृद पाठकों, ग्राहकों, लेखकों व शुभ-चिन्तकों को सूचित करना है कि सर्व सेवा संघ-प्रकाशन की वेबसाइट

www.ssprakashan.com

पर 'सर्वोदय जगत' का प्रत्येक अंक उपलब्ध कराया जा रहा है।

कृपया वेबसाइट देखें। –सं.

महात्मा गांधी इतिहास की एक सर्वोच्च विभूति

❑ डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

गांधीजी के जीवन की जड़ें भारत की धार्मिक परम्परा में जमी हुई थीं—जो सत्य की उत्कट शोध, जीवन मात्र के लिए अतिशय आदर, अनासक्ति के आदर्श और ईश्वर के ज्ञान के सर्वस्व का बलिदान करने की तत्परता पर और जोर देती है। गांधीजी ने अपना सम्पूर्ण जीवन सत्य की निरंतर शोध में ही व्यतीत किया था। वे कहा करते थे, ''मैं सत्य की शोध के लिए ही जीता हूं। इस लक्ष्य को सामने रखकर मैं अपने समस्त कार्य करता हूं, इसी लक्ष्य की सिद्धि के लिए मेरा अस्तित्व है।''

हम केवल अपनी बुद्धि से नहीं बल्कि अपनी सम्पूर्ण चेतना से ईश्वर में विश्वास रखते हैं, तो हम जाति या वर्ग, राष्ट्र या धर्म के किसी भेद के बिना समूची मानव जाति से प्रेम करेंगे। हम सम्पूर्ण मानव-जाति की एकता के लिए प्रयत्न करेंगे। गांधीजी ने कहा, *'मेरे सारे कार्यों का जन्म मानव-जाति के प्रति रहे जो मेरे अखण्ड और अविच्छिन्न प्रेम से हुआ है। मैं ने सगे-सम्बन्धियों और अपरिचितों के बीच, देश बन्धुओं और विदेशियों के बीच, काले और गोरे के बीच, हिन्दुओं और मुसलमानों, पारसियों, ईसाइयों या यहुदियों जैसे दूसरे धर्म को मानने वाले भारतीयों के बीच कभी कोई भेद नहीं जाना। मैं कह सकता हूं कि मेरा हृदय ऐसे भेद करने में असमर्थ रहा है।'*

यह दृष्टिकोण हमें स्वभावतः सारी राष्ट्रीय और अन्तर-राष्ट्रीय समस्यायें हल करने के उत्तम साधन के रूप में अहिंसा को अपनाने की दिशा में ले जाता है। गांधीजी ने दृढ़ता से यह कहा था कि वे कल्पना-विहार करने वाले आदर्शवादी नहीं, किन्तु एक व्यावहारिक आदर्शवादी हैं। अहिंसा केवल संतों और ऋषि-मुनियों के लिए ही नहीं है, वह सामान्य लोगों के लिए भी है। उन्होंने कहा 'अहिंसा वैसे ही हमारी मानव-जाति का नियम है, जैसे हिंसा पशुओं का नियम है। पशुओं में आत्मा सुप्तावस्था में रहती है और वे शरीरिक शक्ति के नियम के बिना दूसरा कोई नियम नहीं जानते। मनुष्य की प्रतिष्ठा का यह तकाजा है कि उच्चतर और उदात्त नियम का पालन करे—आत्मा की शक्ति का कहना माने।'

गांधीजी समूचे मानव-इतिहास में ऐसे पहले पुरूष थे, जिन्होंने अहिंसा के सिद्धान्त को व्यक्ति के क्षेत्र से आगे बढ़ाकर सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र तक फैलाया। उन्होंने अहिंसा का प्रयोग करने और उसकी वास्तविकता की स्थापना करने के लिए ही राजनीति में प्रवेश किया था।

भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई में गांधीजी ने इस बात पर बहुत बड़ा जोर दिया था कि हमें विदेशी हुकूमत से लड़ने के लिए अहिंसा और कष्ट-सहन की सभ्यतापूर्ण कार्य-पद्धति अपनानी चाहिए। भारत की स्वतंत्रता का उनका आग्रह ब्रिटेन के लिए किसी प्रकार की घृणा की बुनियाद पर खड़ा नहीं था। हमें पाप से घृणा करनी चाहिए पापी से नहीं। उन्होंने कहा, 'मेरी दृष्टि में देश-प्रेम और मानव-प्रेम में कोई भेद नहीं है। दोनों एक ही हैं। मैं देशप्रेमी हूं, क्योंकि मैं मानव हूं और मानव-प्रेमी हूं। मैं भारत की सेवा करने के लिए इंग्लैण्ड या जर्मनी का नुकसान नहीं करूँगा। गांधीजी का यह विश्वास था कि भारत के साथ न्याय करने में अंग्रेजों की मदद करके उन्होंने अंग्रेजों की सेवा की है। इसका परिणाम न केवल भारतीय राष्ट्र की मुक्ति के रूप में आया, बल्कि मानव-जाति की नैतिक सम्पत्ति की वृद्धि के रूप में भी आया।

आज के अणुबम और हाइड्रोजन बम के युग में यदि हम जगत् की रक्षा करना चाहते हैं, तो हमें अहिंसा के सिद्धान्त ही अपनाने चाहिए। गांधीजी के कहा था : ''जब मैंने पहले-पहल सुना कि एक अणुबम ने हिरोशिमा को भस्म कर दिया है, तब मेरे मन पर उसका जरा भी असर नहीं हुआ। इसके विपरीत मैंने अपने-आप से कहा, 'अब यदि दुनिया अहिंसा को नहीं अपनाती, तो उसका निश्चित परिणाम होगा मानव-जाति की आत्म हत्या।''

आज दुनिया में होने वाले परिवर्तनों की गति इतनी ज्यादा बढ़ गयी है कि हम नहीं जानते कि अगले 100 वर्षों में दुनिया की क्या शकल हो जायेगी। हम विचारों और भावनाओं के भावी प्रवाहों में बहते चले जायें, फिर भी सत्य और अहिंसा के महान सिद्धान्त तो हमारा मार्गदर्शन करने के लिए अपने स्थान पर सदा अटल ही रहनेवाले हैं। ये ऐसे मूक ध्रुवतारे हैं, जो श्रान्त और उपद्रवों से पीड़ित जगत् पर सदा पवित्र तथा जाग्रत दृष्टि रखते हैं। गांधीजी की तरह हम भी अपने इस विश्वास पर दृढ़ रह सकते हैं कि आकाश में आते-जाते बादलों के ऊपर सूर्य की किरणें चमकती हैं।

हम ऐसे युग में जी रहे हैं, जो अपनी पराजय और अपनी नैतिक शिथिलता को जानते हैं, यह एक ऐसा युग है जिसमें प्राचीन निश्चित मूल्य टूट रहे हैं और परिचित प्रणालिकाएं नष्ट-भ्रष्ट हो रही हैं। असहिष्णुता और कड़वाहट दिनोंदिन बढ़ रही है। नव-निर्माण की वह ज्योति, जिसने महान मानव-समाज को प्रेरित किया था, आज मंद पड़ती जा रही है। मानव-मन अपनी आश्चर्यकारी अद्भुतता और विविधता की बदौलत बुद्ध या गांधी अथवा नीरो या हिटलर जैसे परस्पर विरोधी नमूने उत्पन्न करता है। *यह हमारे लिए बड़े गौरव की बात है कि इतिहास की एक सर्वोच्च विभूति महात्मा गांधी हमारे बीच रहे, हमारे बीच चले-फिरे, हम से बोले और उन्होंने हमें सभ्य तथा सुसंस्कृत जीवन जीने की पद्धति सिखायी। जो मनुष्य किसी का बुरा नहीं करता, वह किसी से डरता नहीं। उसके पास छिपाने को कुछ नहीं होता, इसलिए वह निर्भय रहता है। वह हिम्मत के साथ हरएक आदमी के ठीक सामने देखता है। उसके कदम दृढ़ होते हैं। उसका शरीर सीधा तना हुआ रहता है, उसके शब्द सरल और स्पष्ट होते हैं।* **प्लेटो** ने सदियों पहले कहा था : ''इस जगत् में सदा ही ऐसे कुछ दिव्य प्रतिभा वाले मनुष्य होते हैं, जिनका परिचय और सम्पर्क मानव-समाज की अमूल्य निधि होता है।'' ❑

2 अक्टूबर : गांधी जयंती

गांधी-विचार : जैसा मैंने समझा

❑ विनोबा

महापुरुष-संश्रय

सन् 1916 की 7 जून को मैं कोचरब आश्रम में पहली बार गांधीजी से मिला। आश्रम-जीवन का जो कुछ स्वरूप मैंने अपनी दृष्टि से देखा, उससे मुझे बहुत कुछ मिला। परिणामस्वरूप मुझे अनुभव हुआ कि जीवन एकरस और अखंड है। बापू के आश्रम में जो कुछ मिला, वही अब तक मेरे काम आ रहा है। मेरी जो भूदान-ग्रामदान यात्रा चली, वह सब आश्रम की साधना की आभारी है। उसके पहले मैं जो साधना करता था, वह केवल भावनारूप थी। लेकिन बापू के आश्रम में आने के बाद मुझे आंख ही मिल गयी। यह सारा उपकार बापू का है। बापू का आश्रम मेरे लिए दृष्टिदायी मातृस्थान है।

एकमात्र गुण सत्यनिष्ठा को लेकर मैं बापू के पास पहुंचा था। मुझमें प्रेम बहुत कम था। करुणा उससे भी कम थी। सत्यनिष्ठा के साथ ये दो चीजें मुझे बापू के पास मिलीं। उसमें मेरी जो कठिन कसौटी हुई, उसमें अगर मैं कम पड़ता, तो उनके पास नहीं रह सकता था। पर भगवान की अपार कृपा थी कि उसने मुझे बापू के चरणों में स्थिर किया। अपना हृदय और जीवन जब देखता हूं तो लगता है कि दोनों उनके चरणों में अत्यन्त स्थिर हैं। जो विचार, जो शिक्षण उन्होंने मुझे दिया, नहीं जानता कि उस पर मैं कितना अमल कर सका हूं। वे भी नहीं जानते और शायद आप भी न जान पायेंगे; लेकिन भगवान उसे जानेगा। यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं कि उनके विचारों में से जितना मैं समझा और जितना मुझे रुचा, उतने पर प्रतिक्षण सावधान रहकर अमल करने की मेरी कोशिश चल रही है। संत-महात्माओं की वाणी पुस्तकों में पढ़ना एक बात है और उनका प्रत्यक्ष सत्संग करना, उनके मार्गदर्शन में काम करना, प्रत्यक्ष उनका जीवन देखना अलग बात है। ऐसा महापुरुष संश्रय का लाभ मुझे मिला, इससे मैं धन्य हो गया।

कर्मयोग की दीक्षा

मैं बापू से मिला और उन पर मुग्ध हो गया, वह उनकी अंतर्बाह्य एकता की अवस्था के कारण। फिर कर्मयोग की दीक्षा मुझे बापू से मिली। गीता में तो यह कहा ही है, लेकिन उसका साक्षात्कार हुआ बापू के जीवन में। गीता में स्थितप्रज्ञ के लक्षण आते हैं। वह वर्णन जिस पर लागू हो, ऐसा देहधारी स्थितप्रज्ञ खोजने पर बड़े भाग्य से ही मिलेगा। लेकिन इन लक्षणों के बहुत निकट पहुंचे महापुरुष को मैंने अपनी आंखों से देखा।

सन् 1934 की बात है। पूना में बापू से मिलने मैं गया। उनका अपूर्व आनन्द, शांति, प्रेम देखकर सामान्य मनुष्य तो मुग्ध होगा ही, परन्तु उनसे इतना परिचय रखने वाला मैं भी एकदम स्तब्ध हो गया। बुद्धि की इतनी स्थिरता और शुद्धावस्था मैंने अन्यत्र कहीं नहीं देखी।

गांधीजी की संगति का लाभ मुझे मिला न होता तो गीता जैसी मैं आज समझ सका हूं, वैसी नहीं समझ पाया होता। कहने का मतलब यह है कि गांधीजी के पास से मुझे गीता का अर्थ समझने की चाभी मिली। प्रत्यक्ष देखने से जो प्रतीति आती है, वह भूतकाल के संतों के उदाहरण सुनकर नहीं आती। गांधीजी का जीवन मेरे लिए ऐसा प्रत्यक्ष उदाहरण है। गीता निष्काम कर्मयोग का प्रतिपादन करती है। टीकाकार पूछते हैं कि ''निष्कामता और कर्म दोनों का मेल हो सकता है क्या? या फिर वह कल्पना ही है?'' शंका ठीक भी है। फिर भी उस विषय में मुझे शंका नहीं होती, क्योंकि मेरी आंखों के सामने गांधीजी की मूर्ति स्पष्ट खड़ी है। अनासक्त कर्मयोगी का उदाहरण दुर्लभ है। गीता को समझने की चाभी है, प्रत्यक्ष जीवन। अनासक्त कर्मयोग का साक्षात् आचरण गांधीजी के जीवन में देखने को मिलता है।

शब्द से जीवन ऊंचा

गांधीजी एक ऐसे व्यापक विचारक हो गये कि वे लगभग मनु-याज्ञवल्क्य जैसे स्मृतिकारों की कोटि में आते थे। मनु चिन्तनप्रधान थे तो गांधी सेवाप्रधान। गांधीजी एक्टिविस्ट—कर्मप्रधान थे। उन्होंने जो प्रभाव डाला, वह प्रत्यक्ष है और परोक्ष भी। उनकी

खूबी थी कि वे अपने ग्रंथों की अपेक्षा बहुत बड़े थे, जबकि जीवन की दृष्टि से *शेक्सपियर* और *मिल्टन* अपने ग्रंथों की अपेक्षा छोटे थे। *गांधीजी का जीवन खूब ऊंचा, सात्त्विक और उन्नत था। जीवन की तुलना में एक्स्प्रेशन में, विचार प्रकट करने में वे कमजोर थे। इस कारण उनके ग्रंथों की अपेक्षा उनके जीवन में अधिक प्रतिभा थी। इस सदी में जितने जीवन गांधीजी ने बदले हैं, उतने और किसी दूसरे ने नहीं।*

यह गांधी ज्ञान क्या चीज है, जरा समझने की जरूरत है। अपने देश में आत्मज्ञान का उदय प्राचीन काल में ही हुआ था, और उसकी परंपरा आज तक यहां अखंडित चली आ रही है। विज्ञान का भी उदय अपने यहां हुआ था। पर उसकी परम्परा अखंडित नहीं चली। आधुनिक जमाने में विज्ञान का विकास पश्चिम में हुआ। आत्मज्ञान और विज्ञान के संयोग से सामूहिक अहिंसा का जन्म हुआ है। उसी को गांधी-ज्ञान कहते हैं।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि उसी से दुनिया का भला होने वाला है। इतना ही नहीं, उससे हम दुनिया में स्वर्ग ला सकते हैं। जैसे हाइड्रोजन और ऑक्सीजन मिलकर पानी बनता है, वैसे ही आत्मज्ञान और विज्ञान मिलकर सर्वोदय या साम्ययोग बनता है।

सर्वोदय : नये युग का मिशन

बापू तो क्रांतदर्शी थे। बहुत दूर का देख सकते थे, बहुत आगे का सोच सकते थे। इसलिए उन्होंने नये युग के अनुरूप नया मिशन पहले से ही सोच रखा था। उन्होंने देखा कि स्वराज्य मिलते ही *'स्वराज्य'* शब्द फिर लोगों को इतनी प्रेरणा, उत्साह नहीं दे सकेगा। स्वराज्य का ध्येय आंखों के सामने था, इसी कारण लोगों में संकल्प-शक्ति पैदा हुई। इसी तरह स्वराज्य के बाद लोगों के सामने कोई व्यापक संकल्प हो, तभी उनकी शक्ति बढ़ेगी। पुराना शब्द सार्थक होने से पूर्व ही दूसरा शब्द दे देना चाहिए, यह समझकर उन्होंने *'सर्वोदय'* शब्द दिया।

सर्वोदय-विचार इतना व्यापक है कि हम उसके अमल करने की कोशिशमात्र कर सकते हैं, पूरा अमल तो हो नहीं सकता। सर्वोदय के पूरे अमल के लिए तो परमेश्वर के दर्शन की जरूरत है। बापू स्वयं कहते थे कि मेरा संपूर्ण जीवन, साधना तथा सत्याग्रह वगैरह कार्य परमेश्वर की खोज के लिए हैं। आम तौर पर ईश्वर की खोज करने वाले एकांत में जाते हैं। बापू एकांत में नहीं गये। लोगों के बीच रहकर ही उन्होंने काम किया। हां, ध्यान-प्रार्थना आदि के लिए वे 15-20 मिनट निकाल ही लेते थे। लेकिन वे कहते थे कि, ''ध्यान हमारे काम में हर क्षण होना चाहिए और एकांत तो जनता के बीच काम करते-करते हर पल मिलना चाहिए।''—सही एकांत वह है, जहां हम मन से अलग हो जाते हैं। मन से अलग होकर बापू जनसेवा में हमेशा एकांत का अनुभव करते थे और कहते थे कि, ''ईश्वर की खोज और दर्शन के लिए मेरा जीवन है।''

ग्राम-स्वराज्य का उद्घोष

गांधीजी ने बहुत पहले ही यह बात समझ ली थी कि विज्ञान और टेक्नॉलॉजी के विकास के कारण सत्ता और सम्पत्ति के केन्द्रीकरण का रास्ता खुल जायेगा और केन्द्रित सत्ता और केन्द्रित सम्पत्ति सारी मानवजाति को अपना गुलाम बना लेगी। इसलिए उन्होंने ग्राम-स्वराज्य का उद्घोष किया था।

'विकेन्द्रीकरण' और 'ग्राम-स्वराज्य' का यह विचार मानवजाति के लिए गांधीजी की अनोखी देन है। समस्त मानवीय गतिविधियों का केन्द्रीकरण विज्ञान का एक अभिशाप है। गांधी हमारे युग की इस विभीषिका से छूटने के मानवजाति के प्रयास के प्रतीक स्वरूप थे। गांधी एक व्यक्ति नहीं, पर अहिंसा-तत्त्व के प्रतीक थे। उनके मार्फत अहिंसक समाज-रचना की एक अच्छी रूपरेखा मानवजाति को मिली है।

स्त्री-शक्ति-जागरण

जहां तक मुझे मालूम है, *स्त्रियों के उद्धार के लिए हिन्दुस्तान में जो प्रयत्न हुए, उनमें प्राचीन काल में भगवान श्रीकृष्ण और भगवान महावीर के नाम आते हैं तथा अर्वाचीन काल में गांधीजी का नाम आता है।*

गांधीजी ने तो स्त्रियों की सारी शक्ति ही खोल दी। गांधीजी के कारण अहिंसारूपी शस्त्र सामने आया। यह शस्त्र पुरुष जितना इस्तेमाल कर सकते हैं, उससे ज्यादा स्त्रियां कर सकती हैं। स्वराज्य आंदोलन की बात है। चर्चा चल रही थी कि शराब की दुकान पर पिकेटिंग करने का क्या इंतजाम किया जाए? किसी ने कुछ सुझाया तो किसी ने कुछ। गांधीजी ने सुझाया कि यह काम स्त्रियों का होना चाहिए। लोग सुनते ही रह गये कि गांधीजी क्या बोल रहे हैं! जहां बिलकुल अनीतिमान लोग आते हैं और सब प्रकार का बुरा बर्ताव चलता है, ऐसे लोगों के बीच स्त्रियां क्या करेंगे? लेकिन गांधीजी ने कहा कि वहां स्त्रियां ही जायेंगी। *जो सबसे गिरे हुए लोग हैं, उनके खिलाफ हमारे पास जो ऊंची से ऊंची नैतिक शक्ति है, वही भेजी जानी चाहिए। तो स्त्रियां वहां गयीं और उन्होंने जो काम किया, वह सारे भारत ने देखा।*

एक बार अण्णासाहेब कर्वे वर्धा आये थें वे बोले कि, ''गांधीजी ने तो जादू कर दिया! स्त्रियों की उन्नति के लिए 25-25 साल मेहनत करके जो काम हम नहीं कर सके और जिसकी कल्पना नहीं कर सके, वह चीज गांधीजी ने कर दी!'' *यह गांधीजी ने क्या किया, यह तो अहिंसा ने किया! गांधीजी ने रक्षण-शक्ति अहिंसा मानी, हिंसा नहीं। अगर स्त्रियों को अव्वल स्थान देना हो तो यह जरूरी है कि रक्षण का साधन अहिंसा हो।इससे मातृशक्ति को स्थान मिलेगा। अहिंसा और शांति की मूर्ति तो स्त्री ही है।* ❑

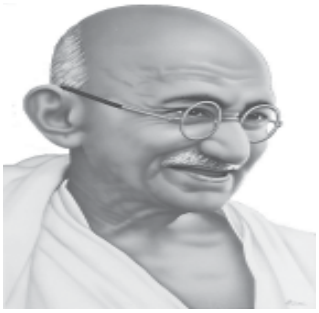

'मैं देशी और विदेशी के फर्क से नफरत करता हूं।'

❑ गांधी

विरासत

मेरे सपनों का भारत

'मेरे मन में एक गांधीवादी भारत की तस्वीर है।'

❑ जे पी

मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा, जिसमें गरीब से गरीब लोग भी यह महसूस करेंगे कि वह उनका देश है—जिसके निर्माण में उनकी आवाज का महत्त्व है। मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा, जिसमें ऊंचे और नीचे वर्गों का भेद नहीं होगा और जिसमें विविध सम्प्रदायों में पूरा मेलजोल होगा। ऐसे भारत में अस्पृश्यता, शराब या और दूसरी नशीली चीजों के अभिशाप के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। उसमें स्त्रियों को वही अधिकार होंगे जो पुरुषों को। चूंकि शेष सारी दुनिया के साथ हमारा संबंध शांति का होगा, यानी न तो हम किसी का शोषण करेंगे और न किसी के द्वारा अपना शोषण होने देंगे, इसलिए हमारी सेना छोटी-से-छोटी होगी। ऐसे सब हितों का, जिनका करोड़ों मूक लोगों के हितों से कोई विरोध नहीं है, पूरा सम्मान किया जायेगा, फिर वे देशी हों या विदेशी। अपने लिए तो मैं यह भी कह सकता हूं कि मैं देशी और विदेशी के फर्क से नफरत करता हूं। यह है मेरे सपनों का भारत।...इससे भिन्न किसी चीज से मुझे संतोष नहीं होगा।

यदि भारत ने हिंसा को अपना धर्म स्वीकार कर लिया और यदि उस समय मैं जीवित रहा, तो में भारत में नहीं रहना चाहूंगा। तब यह मेरे मन में गर्व की भावना उत्पन्न नहीं करेगा। मेरा देश-प्रेम मेरे धर्म द्वारा नियंत्रित है। मैं भारत से उसी तरह बंधा हुआ हूं, जिस तरह कोई बालक अपनी मां की छाती से चिपटा रहता है, क्योंकि मैं महसूस करता हूं कि वह मुझे मेरा आवश्यक आध्यात्मिक पोषण देता है। उसके वातावरण से मुझे अपनी उच्चतम आकांक्षाओं की पुकार का उत्तर मिलता है यदि किसी कारण मेरा यह विश्वास हिल जाय या चला जाय, तो मेरी दशा उस अनाथ जैसी होगी, जिसे अपना पालक पाने की आशा ही न रही हो।

यदि भारत तलवार की नीति अपनाये तो वह क्षणिक विजय पा सकता है। लेकिन तब भारत मेरे गर्व का विषय नहीं रहेगा।...भारत द्वारा तलवार का स्वीकार मेरी कसौटी की घड़ी होगी। मैं आशा करता हूं कि उस कसौटी पर मैं खरा उतरूंगा। मेरा धर्म भौगोलिक सीमाओं से मर्यादित नहीं है। यदि उसमें (धर्म में) मेरा जीवन्त विश्वास है, तो वह मेरे भारत-प्रेम का भी अतिक्रमण कर जायेगा। *(मेरे सपनों का भारत)* ❑

मेरे सपनों का भारत एक ऐसा समुदाय है, जिसमें हरएक व्यक्ति, हरएक साधन निर्बल की सेवा के लिए समर्पित है—अन्त्योदय तथा निर्बल और असहाय की बेहतरी को समर्पित समुदाय।

वह ऐसा समुदाय है, जिसमें लोगों की मानवता की कद्र है—वह समुदाय, जिसमें हरएक व्यक्ति का अपनी अन्तरात्मा के अनुसार कार्य करने का अधिकार मान्य है और सब उसका सम्मान करते हैं।

वह ऐसा समुदाय है, जिसमें अलग-अलग विचारों पर शांतिपूर्ण ढंग से तर्क-वितर्क होता है। जिसमें मतभेद सभ्य तरीके से तय किये जाते हैं।

वह ऐसा समुदाय है, जिसमें सबके पास काम है—ऐसा काम, जिसमें उन्हें संतोष भी होता है और सुन्दर जीवन-यापन भी। वह ऐसा समुदाय है, जिसमें हरएक को अपनी निजी रचनात्मक क्षमता को विकसित करने की पूरी गुंजाइश है, जिसमें हरएक दस्तकार की, फैक्टरी या फार्म जहां भी वह काम करता है, उसके स्वामित्व और प्रबंध में भागीदारी और दखल है।

वह ऐसा समुदाय है, जिसमें सबको बराबर के अवसर प्राप्त हैं—वह समुदाय, जिसमें शक्तिशाली, बहुसंख्यक स्वयं ही निर्बल वर्ग, अल्पसंख्यकों की बाधाओं को समझते हैं, और उनको तरजीही सुविधाएं देने के लिए कोई कोर-कसर नहीं रखते, जिससे उनकी ऐतिहासिक बाधाएं दूर हों।

वह ऐसा समुदाय है, जिसमें हरएक साधन जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति में लगा है—उन्हें पर्याप्त भोजन, कपड़ा, मकान और पीने का पानी मुहैया करने में।

मेरे सपनों का भारत ऐसा समुदाय है, जिसमें हरएक नागरिक समुदाय के कार्य-व्यापारों में हिस्सा लेता है, जिसमें हरएक नागरिक अपने निजी स्वार्थों से परे मामलों को समझता है और उनमें हिस्सा लेता है। वह ऐसा समुदाय है, जिसमें नागरिक—खास तौर से निर्बल—सुधार लागू करने और शासकों पर निगाह रखने के लिए संगठित और जागरूक हैं।

वह ऐसा समुदाय है, जिसमें अधिकारी और निर्वाचित प्रतिनिधि जनता के सेवक हैं; जिसमें जनता को, उनके पथभ्रष्ट होने पर, उन्हें दण्डित करने का अधिकार और अवसर है, जिसमें सत्ता को सुविधा नहीं माना जाता, बल्कि जनता द्वारा सौंपा गया भरोसा माना जाता है।

संक्षेप में, मेरे मन में एक स्वतंत्र, प्रगतिशील और गांधीवादी भारत की तसवीर है। *(जे पी का वर्ग-संघर्ष)* ❑

यक्ष-प्रश्न

'गांधी-विचार' क्रांति का साधन कैसे बने?

उनकी क्रांति के प्रतीक चरखा, झाड़ू और प्रार्थना कहां है?

❑ न्या. चन्द्रशेखर धर्माधिकारी

मेरा एक लेख 'क्या गांधी-संस्थाएं समाधियां और कब्रिस्तान बन रही हैं?' 'अंतिमजन' के मई 2014 के अंक में प्रकाशित हुआ। जिसमें मैं अपने पिताजी दादा धर्माधिकारी के एक कथन का उल्लेख किया था, जो उनकी मृत्यु के कुछ महीने पूर्व उन्होंने सर्वोदय कार्यकर्ता को सन् 1985 में संबोधित करते समय अनी वेदना व्यक्त करने के लिए किया था। इस कथन में उन्होंने कहा था— *''गांधी की संस्थाएं गांधी के बाद मर गयी हैं। उनके कलेवर बचे हुए हैं। ये कब्रिस्तान या समाधियां हैं, जिनमें आप जी रहे हैं। अब तो ये सारी संस्थाएं वाणिज्य और व्यावसायिक संस्थाएं हैं। हमारे देश में जीवन का आदर कभी नहीं रहा, सिर्फ पूजा रही। गाय को पूजा, मनुष्यों को पूजा, वृक्षों को, पहाड़ों को पूजा, पत्थरों को पूजा, नदियों को पूजा, लेकिन उनको जिलाया कभी नहीं। जीवननिष्ठा का यहां आत्यन्तिक अभाव है। इसलिए आमूलाग्र परिवर्तन की आवश्यकता है।''* वह लेख प्रकाशित होने के बाद गांधी की तथा सर्वोदय की संस्थाओं में काम करने वाले कुछ कार्यकताओं की तीखी टिप्पणियां आयीं, जिनमें उनकी वेदना, विरोध और इस कथन की निन्दा सम्मिलित थी। वह स्वाभाविक भी है। लेकिन मेरी अपेक्षा थी कि उसके बाद आत्मचिन्तन और आत्मशोध की भूमिका अपनायी जायेगी। शायद दादा ने जो वेदना व्यक्त की थी उसे उन मित्रों के मन तक या हृदय तक पहुंचाने में मैं कामयाब नहीं हो सका। वह मेरी अपनी कमजोरी थी।

दादा ने ही एक जगह कहा है कि 'आवेश' या 'जोश' पैदा होने के लिए सामने किसी विरोधी का होना जरूरी है। इतना ही नहीं, हर चीज में दोष देने के लिए भी ईश्वर या शैतान की आवश्यकता है। 'स्केप गोट' (बलि का बकरा) बनाकर सारे दोष उसके माथे पर मढ़ने के लिए यह आवश्यक है। जब तक प्रतिकार और प्रतिस्पर्द्धा है तब तक ही जोश, आवेश या उत्साह दिखाई देता है। गांधी के समय अंग्रेज और उनका साम्राज्य था और विधायक कार्यक्रम भी स्वराज्य के आंदोलन का हिस्सा था। इसलिए उसमें जोश, आवेश और उत्साह था। अब वह नहीं रहा। क्या रचनात्मक कार्य में जोश और उत्साह रहे इसलिए प्रतिस्पर्द्धा आवश्यक है? राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद लोग कहने लगे थे कि अब गांधी और गांधी-विचार का प्रयोजन समाप्त हो गया है। वे अब कालबाह्य या संदर्भहीन हो गये हैं। आज पाश्चिमात्य राष्ट्रों में गांधी और उनके विचारों की आकांक्षा निर्मित हो रही है। इसलिए गांधी और गांधी-विचार भी हमें वहां से ही 'ईम्पोर्ट' यानी 'आयात' करने होंगे। ऐसी दयनीय परिस्थिति है, जिसका अध्ययन करना नितांत आवश्यक है। गांधी ने कभी 'स्वतंत्रता' शब्द का प्रयोग नहीं किया। गांधी विचार क्रांति का साधन कैसे बने? उनकी क्रांति के प्रतीक चरखा, झाड़ू और प्रार्थना कहां है? उनका शब्द था 'संपूर्ण स्वराज्य'। क्या राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद सामान्यजन को सभी यानी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, गुलामी से मुक्ति मिली? यही तो मूल प्रश्न है। राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद हमारी सरकारें आयीं और सब कुछ सरकार और न्यायालय को ही करना चाहिए, यह भूमिका लोगों ने अपनायी है। अब सभी समस्याओं के लिए सरकार या न्यायालय जिम्मेदार है, और सब कुछ करना उन्हीं का दायित्व है, यह माना जा रहा है। हम भूल रहे हैं कि लोकतंत्र में अभिक्रम और प्रभाव लोगों का होगा, तभी लोकतंत्र प्राणवान बन सकता है। क्या इस कर्तव्य को पूर्ण करने का दायित्व विधायक संस्थाएं निभा रही हैं? निभा सकती हैं? गांधी ने तो माना था कि ''विधायक कार्यक्रम पूर्ण स्वराज्य की रचना की दृष्टि से अपना खुद का महत्त्व रखता है। रचनात्मक कार्यक्रम ही पूर्ण स्वराज्य का मुकम्मल आजादी को हासिल करने का सच्चा और अहिंसक मार्ग है। उसकी संपूर्ण या पूरी सिद्धि ही संपूर्ण स्वतंत्रता, यानी संपूर्ण स्वराज्य है। रचनात्मक कार्यक्रमों को दूसरे शब्दों में, अधिक और उचित रीति से सत्य और अहिंसात्मक साधनों द्वारा पूर्ण स्वराज्य की यानी संपूर्ण या पूरी आजादी की रचना कहा जा सकता है। क्या आज गांधी का अपेक्षित पूर्ण स्वराज्य स्थापित हो गया है? क्या ऐसी आजादी प्राप्त हो गयी है? क्या मुक्ति का आंदोलन समाप्त हो गया है? यही आत्मचिन्तन का विषय है। मैं स्वयं गांधी द्वारा स्थापित रचनात्मक कार्य और संस्थाओं को समाज-परिवर्तन के 'श्वसन केन्द्र'और 'प्रक्षेपण केन्द्र' मानता हूं। लेकिन क्या यह मानना ही काफी है? *आज अंग्रेज गये, तो भी अंग्रेजियत कायम है। इस पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है। यही दादा द्वारा व्यक्त की गयी वेदना का विषय है। इसपर गंभीरता से विचार करना आज की आवश्यकता है।*

आज हम जिस दौर से गुजर रहे हैं उसमें गांधी-विचार क्रांति का साधन बन सकता है क्या? यह हमारे सामने का यक्ष प्रश्न है। क्रांति का अंकगणित नहीं होता, उसके प्रतीक होते हैं। चरखा, झाड़ू, सामुदायिक प्रार्थना, ये गांधी के समाज-परिवर्तन तथा क्रांति के प्रतीक थे। गांधीजी ने कहा था कि ''चरखा मेरे विधायक कार्य के सूर्यमंडल में का सूर्य है।'' हमें यह जान लेना चाहिए कि गांधी के पूर्व भी इस देश में चरखा था। ईसवी सन् 1714 में बंगाल में अकाल पड़ा। उस समय टी. एच. कोलबुक नामक अंग्रेज अफसर ने किसानों को अतिरिक्त यानी पूरक धंधा देने के लिए चरखे का प्रचलन किया ताकि किसान की बदहाली अकाल के समय में भी कुछ हद तक कम हो सके। तब

तक शायद खुद गांधी भी चरखे के बारे में जानते नहीं थे। लेकिन इस अंग्रेज अफसर कोलबुक के चरखे में और गांधी के चरखे में आमूल भेद या फर्क है। गांधी के चरखे के साथ 'स्वदेशी' की भावना जुड़ी थी, और 'विदेशी' वस्त्र का बहिष्कार भी उसी भावना का परिणाम था। मौलाना मुहम्मद अली ने तो यहां तक कहा था कि *''गांधी का चरखा दुनिया की सबसे अद्वितीय 'तोप' है, जिसका गोला छह हजार मील मंचेस्टर में जाकर गिरा। और तकली इंग्लैंड के सिर पर बरस पड़ी।'' गांधी ने चरखा और तकली, यानी खादी को 'स्वदेशी' और स्वावलंबन के साथ ही हृदय-परिवर्तन, समाज-परिवर्तन तथा संदर्भ-परिवर्तन का प्रतीक माना।* क्रांति की प्रक्रिया में प्रतीक दो तरह के होते हैं, एक 'चित्रात्मक' यानी सिम्बॉलिक और दूसरा 'क्रियात्मक'। क्रियात्मक प्रतीक आचरण में शरीक होता है। चरखे में शारीरिक श्रम की प्रतिष्ठा भी अभिप्रेत है। यही अहिंसक कार्यक्रम की कसौटी है। निष्ठा से चरखे पर सूत कातने वाला और जीविका के लिए जो खादी का उत्पादन करता है, इन दोनों में हार्दिक अपनापन निर्माण हो, यह हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया भी इसमें निहित थी। 'काते सो पहने—पहने सो काते' यह सिर्फ नारा या घोषवाक्य नहीं है, यह विचार और आचार-प्रणाली है। उत्पादक परिश्रम की प्रतिष्ठा यह सांस्कृतिक और आध्यात्मिक कार्यक्रम का एक हिस्सा है। 'स्वदेशी सिर्फ वस्तु नहीं होती, वह एक वृत्ति है। आत्म मर्यादा, आत्मविश्वास और आत्मविकास की भूमिका भारत के लोगों में निर्मित हो, इसलिए क्या करना चाहिए, यह प्रश्न आज भी उपस्थित है। स्वदेशी वृत्ति 'सार्वत्रिक' और प्रतिष्ठित हो, यह आज भी जरूरी है।

'चरखा' आर्थिक स्वालंबन और आर्थिक विषमता समाप्त करने का प्रतीक है। वह वर्ग-निराकरण या वर्ग-समन्वय का भी प्रतीक है। झाड़ू सामाजिक विषमता और जातिभेद समाप्ति का प्रतीक है। ब्राह्मण और सफाई कामगार यानी 'वाल्मीकि' यह जातिभेद तथा वर्गभेद समाप्त करने के लिए 'झाड़ू' साधन माना गया। सिर्फ गंदगी साफ करने वाला कोई न हो, गांधीजी यहीं नहीं रुके, बल्कि गंदगी साफ करने का औजार ब्राह्मण या सर्वण भी अपने हाथ में लें, तो दूसरी ओर मजदूर का औजार, जिसका प्रतीक चरखा है, वह मालिक अपने हाथ में ले यह, आर्थिक और सामाजिक विषमता समाप्त करने के लिए जरूरी है, ऐसा गांधीजी मानते थे। 'झाड़ू' ब्राह्मण के हाथ और 'गीता' वाल्मीकि—सफाई मजदूर के हाथ हो, यह क्रांति की पहल थी। *जात-पाँत पर आधारित ऊँच-नीच की भावना तथा आर्थिक विषमता समाप्त करने के लिए गांधी ने झाड़ू और चरखे को प्रतीक माना, और सामुदायिक प्रार्थना को मानवनिष्ठ भारतीयता प्रस्थापित करने का साधन तथा प्रतीक माना। जिसमें परस्पर की भलाई के लिए प्रार्थना करना निहित है। भिन्न-भिन्न जाति, धर्म, सम्प्रदाय, भिन्न-भिन्न भाषिक, प्रादेशिक समुदाय, एकभाव और समान भाव से रहें, और उसके लिए परस्पर की भलाई के लिए प्रार्थना करें, यही तो मानवनिष्ठ भारतीयता का प्रतीक है।* ऐसी भूमिका गांधीजी द्वारा घोषित विधायक कार्यक्रमों की और विधायक संस्था की भी भूमिका थी। विधायक कार्यक्रमों द्वारा या विधायक कार्य करने वाली संस्था द्वारा, संदर्भ-परिवर्तन भी अपेक्षित था। यह संदर्भ परिवर्तन हो और उसके द्वारा या उसी के साथ-साथ मनुष्य का मनुष्य से जो संबंध है उसका भी शुद्धिकरण हो और इसी प्रक्रिया से लोक-शिक्षण भी हो, यह विधायक कार्यक्रम और विधायक कार्य करने वाली संस्था का अधिष्ठान है। इसी प्रक्रिया में हृदय-परिवर्तन की भूमिका भी निहित है। यह एक अनोखा वैज्ञानिक विचार था। विधायक कार्यक्रम सिर्फ 'कर्मकांड' नहीं है। यह तो वैचारिक तथा मानवीय संबंधों में परिवर्तन का साधन था और है। शुरू में विधायक कार्यक्रम प्रतिकार और सत्याग्रह की तैयारी का कार्यक्रम माना गया था, आजादी हासिल करने के लिए। इसलिए उसमें 'जोश' था। अब वह 'जोश' या 'आवेश' नहीं है। लेकिन विधायक कार्यक्रम का 'स्वतंत्र' मूल्य है, यह हम भूल रहे हैं। विधायक वृत्ति के सिवा विधायक कार्य खोखला है, वह सिर्फ 'कर्मकांड' ही बनकर रह जायेगा, यह डर है।

सेवा से क्रांति का सवाल

सेवा का क्रांति से क्या संबंध है, यह प्रश्न उपस्थित किया जाता है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि सेवा निरंतर है। वह क्रांति से अधिक व्यापक और मानवीय है। उसके परिणाम भी दीर्घकालीन होते हैं। उसे 'उपकार' का भी कार्य कहा जाता है। लेकिन असल में 'उपकार' का अर्थ है दूसरे इनसान से नजदीकी स्थापित करना। अंग्रेजी में इसे 'फिलेन्थॉफी' कहते हैं। इस शब्द का मूल अर्थ है—'फालयस' यानी प्रेम, 'ॲथ्रफॉस' यानी मनुष्य। मनुष्य के प्रति प्रेम या स्नेह भावना से प्रेरित कार्य है, वह है फिलेन्थ्रॉफस, यानी 'उपकार' या सेवाकार्य। वैसे भी विधायक संस्था का अधिष्ठान है, 'सौहार्द' भावना। प्रचलित मूल्यों में परिवर्तन करने के लिए साथियों को जोड़ना पड़ता है। इसे आधार चाहिए इसलिए 'संगठन' की आवश्यकता महसूस की गयी। ऐसी संस्था या संगठन में मुख्य है 'मनुष्य'। और संगठन के पीछे का विचार कार्य उसका अधिष्ठान है। किसी तत्त्व के आधार पर व्यक्तियों का समूह एकत्रित होता है, तो 'परस्पर' सौहार्द यही ऐसी संस्था का स्थाई और महत्त्व का आधार होता है, सत्ता और सम्पत्ति नहीं। वह तो इस आधार में अड़चनें पैदा करती है। फिर संस्था व्यक्तिनिष्ठ, सत्तानिष्ठ, सम्पत्तिनिष्ठ बन जाती है, और कई बार वह जीविका का भी साधन बनती है। *'सेवा' और 'जीविका' इनमें द्वन्द्व निर्मित होता है। अंग्रेजी में तीन शब्द हैं, 'प्रोफेशन', 'वोकेशन', 'ऑक्युपेशन'। जीविका के लिए किया जाने वाला व्यवसाय, फुरसत या आनन्द के लिए किया जाने वाला व्यवसाय और लोकहित के लिए किया जाने वाला कार्य इनका समन्वय हो सकता है क्या? यही मुख्य प्रश्न है? जो प्रोफेशन होगा, वही 'वोकेशन' रहेगा और वही लोकसेवा का साधन होगा। यह त्रिवेणी संगम होगा तो क्रांति के बीज की उपज हो सकती है। अगर इन तीनों में विरोध भावना होगी, तो व्यक्तित्व और समाज-कार्य का नाश होता है। ऐसे विरोध के कारण ही संस्था 'कलुषित' और 'प्रदूषित' हो जाती है। फिर निहित स्वार्थ अधिक बलवान बनते हैं और संस्था की अवनति होती है।*

...क्रमशः अगले अंक में

11 अक्टूबर जे. पी. जयंती

संपूर्ण क्रांति, सर्वोदय और वर्ग-संघर्ष

❑ जयप्रकाश नारायण

''सम्पूर्ण क्रांति एक सतत क्रांति है, संपूर्ण क्रांति के आंदोलन की गाड़ी को आगे बढ़ते ही रहना है, किसी व्यक्ति के रहने या न रहने से इसकी प्रगति रुकनी नहीं चाहिए, हर व्यक्ति अपने सामर्थ्य के अनुसार अकेले अथवा दूसरों के सहयोग से इस काम को आगे बढ़ायें।''

कौन-सा कार्यक्रम हम लेंगे, क्या करें, यह विचार करने की बात है। एक प्रश्न हमसे पूछा जाता है, जिसका उत्तर मैंने दिया तो उस पर से काफी भ्रम फैला, और पृष्ठभूमि जो मेरी रही या सर्वोदय की रही उसको देखते हुए जो भ्रम हुआ, वह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। हमने इस बात को कहा कि हमें, जो पिछड़े हुए लोग हैं, जो शोषित और दलित लोग हैं उनको अलग संगठित करना होगा, तो लोगों ने पूछा कि इससे तो वर्ग-संघर्ष पैदा होगा? मैंने कहा कि वर्ग-संघर्ष अनिवार्य होगा, तो ठीक है वर्ग-संघर्ष हो, लेकिन यह उस प्रकार का नहीं होगा, जैसा कि मार्क्सवाद के वर्ग-संघर्ष का रूप है। हिंसा करने का उसमें कोई प्रश्न ही नहीं उठेगा, और जिसके सामने हमारा संघर्ष है उसको, उसके दिल को हम बदलने की कोशिश करेंगे, उसके प्रति हमारा भाव स्नेह का रहेगा, उसको कोई दुश्मन हम नहीं मानेंगे, यह नयी बात उस संघर्ष में होगी जो आम तरह से 'क्लास-स्ट्रगल' में नहीं होती है। यह मार्क्सवादी 'क्लास-स्ट्रगल' में नहीं होता है। लेकिन इससे हम बच सकेंगे, खासकर बिहार में, जहां जमींदारी-प्रथा थी, ऐसा हमें नहीं लगता है। और आपको, जैसा मैंने कहा, गंभीरता से विचार करना होगा कि इस दिशा में हम बढ़ते हैं तो फूँक-फूँककर हमें कदम रखना है, क्योंकि संघर्ष में कई रूप हो सकते हैं। गरीब-अमीर, शक्तिशाली-दुर्बल के बीच संघर्ष का जो रूप दुनिया में आया, तो अहिंसा से यह काम कैसे हो सकता है, यह हमें सोचना पड़ेगा। हो सकता है कि हमें जेल जाना पड़े, लाठी खानी पड़े, और भी हमें संकट को झेलना पड़े, तो इन सबके लिए हमें तैयार रहना पड़ेगा।

सर्वोदय और संपूर्ण क्रांति

सर्वोदय का हमारा आंदोलन जो माना जाता था, उसका अब रूप संपूर्ण क्रांति का आंदोलना बना है। *संपूर्ण क्रांति होती है तभी सर्वोदय होता है, ऐसा मैं मानता हूं। सर्वोदय जहां नहीं है, वहां संपूर्ण क्रांति नहीं है। जहां सर्वोदय में सबका उदय हो सकता है, वहां जो शोषक-वर्ग है उसका भी भला हो, यह प्रश्न बराबर पूछा जाता है। सबका भला हो, सबका उदय तो शोषकों का उदय हो इसका क्या अर्थ है, इसका क्या मानी है? तो इसका मानी तो यही है कि उनको शोषण करने से बचाया जाय। उनको समझाया जाय कि शोषण करना वह बंद करें, वह अहित कर रहे हैं अपना, अपने वर्ग का, और इससे समाज में झगड़े पैदा होंगे, अशांति पैदा होगी, विस्फोट पैदा हो सकता है।* परन्तु वे समझते नहीं हैं तो उनके विरुद्ध असहयोग या और कोई उपाय शांतिमय संघर्ष का करना पड़ेगा, ऐसा मैं मानता हूं।

सत्ता के वितरण का प्रश्न

इस समय, आज की परिस्थिति में, सर्वोदय-कार्यकर्ताओं के लिए स्वर्ण अवसर आया है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। राजनीतिक दृष्टि से सत्ता के वितरण की समस्या है। सत्ता नीचे के स्तरों पर आये, और वहां सत्ता का सदुपयोग हो। सत्ता उनके हाथों में आ सके, वह केवल नाम का परिवर्तन न रह जाय, सच्चा परिवर्तन हो। इसके लिए व्यापक लोक-शिक्षण की जरूरत है। इसमें युवा-वर्ग खास तरह से बहुत बड़ा पार्ट अदा कर सकता है—लोगों को समझाने, लोगों को तैयार करने में, उनके मानस को बदलने में। जब तक लोक-मानस नहीं बदलेगा, तब तक क्रांति, जन-क्रांति, लोक-क्रांति होगी नहीं, यह समझना चाहिए। इसलिए यह सुन्दर अवसर अया है। जहां तक हमें सत्ता से मदद मिले, मदद लें। जहां हम समझते हैं कि सत्याग्रह के द्वारा हम आगे बढ़ सकते हैं, और वह सत्याग्रह राजनीति का भी रूप ले तो सत्ता से हमारी लड़ाई हो।

आज तो संघर्ष के गर्भ से निकली हुई सत्ता है तो शायद संघर्ष करने की बात न हो। इसके साथ तो सहयोग करना चाहिए। परन्तु हम इस बात को समझकर करें कि जनता के बीच से शक्ति पैदा करनी है। *बिहार की युवा-शक्ति का इसमें उपयोग करना, हर गांव में ग्राम-सभाओं का निर्माण करना, वहां चुनाव आम राय से हो सके, इसकी कोशिश करना। यह न हो कि चुनाव के द्वारा फिर वही लोग प्रतिष्ठित हो जायं। एक नयी शक्ति उनके हाथों में आ जाय, जिनके हाथों में पहले से ही धन की, रोब की, सत्ता की शक्ति थी। ऐसा न हो। वास्तव में जो दबे हुए लोग हैं उन्हें ऐसा लगे कि हमारे लिए एक नया बिहान हुआ है, और हमको एक ऐसा मौका मिला है कि हम अपनी पीठ सीधी कर सकें, अपने अधिकारों के लिए लड़ सकें।* इसमें से आपस में दो वर्गों का संघर्ष हो तो जहां तक मुझे लगता है कि वह अनिवार्य है। उसको हम टाल नहीं सकते हैं। अपने किसी अहिंसा के सिद्धान्त का सहारा लेकर कि यह अहिंसा के खिलाफ है तो हमारी वह सेवा जो है उससे समाज को लाभ तो होगा, पर समाज में आमूल परिवर्तन तो नहीं आयेगा।

परिवर्तन में, उसकी गोद में संघर्ष छिपा हुआ है। उस संघर्ष के लिए मैंने आह्वान किया है। आज फिर आप सबका आह्वान करता हूं। *इस संपूर्ण क्रांति को आप सफल बनायें। इसमें अगर वर्गों का, जातियों का, व्यक्तियों का, निहित स्वार्थों का आपस का संघर्ष होता है तो वह हो।* हम केवल इस बात को देखें कि उस संघर्ष में जो दबाये हुए लोग हैं उनकी विजय होती है, जो पिछड़े हुए लोग हैं, वे आगे आते हैं। ऐसा संघर्ष नहीं कि फिर पीछे ढकेल दिया जाय उनको कि सर तुमने उठाया है तो सर दबोच देंगे, और तुम इस लायक नहीं रहोगे कि सर तुम्हारा उठ सके। उसको खत्म न कर दें, यह देखना होगा। इस बात में अपने मन में कोई सन्देह नहीं होना चाहिए और यह सोचकर चलना चाहिए कि यह रास्ता बीहड़ है। लेकिन अगर विचारपूर्वक इस रास्ते पर चलेंगे तो इस रास्ते पर हम आगे बढ़ सकेंगे, समाज भी आगे बढ़ सकेगा।

इस हिंसा के असली जनक कौन हैं?

राजनीतिक उद्देश्य से प्रेरित ग्रामीण हिंसा में वृद्धि को देखते हुए देशभर में इधर बहुत चिन्ता प्रकट हो गयी है। इसमें संदेह नहीं कि अंशतः यह हिंसा राजनीतिक विचारधारा से प्रेरित कृत्रिम प्रयासों का परिणाम है, लेकिन यदि गरीबी, बेकारी और बहुत सारे सामाजिक-आर्थिक अन्याय कायम न होते और इससे हिंसा के पनपने के लिए जमीन न तैयार की गयी होती, तो यह हिंसा जड़ कदापि न पकड़ती। *यदि वर्तमान सुधार-कानून ही समुचित रूप से कार्यान्वित कर दिये जायं, तो ग्रामीण क्षेत्र में एक लघु सामाजिक क्रांति हो जायेगी। मेरा यह कथन अगर सत्य है तो इसका विपर्यय भी उतना ही सत्य है।*

ग्रामीण हिंसा में यह जो वृद्धि हम देख रहे हैं, वह इतने लम्बे अर्से तक इन कानूनों को कार्यान्वित न कर सकने का ही अनिवार्य परिणाम है। इस हिंसा के जनक तथाकथित नक्सलवादी नहीं हैं, बल्कि वे हैं, जिन्होंने लगतार इतने वर्षों तक उक्त कानूनों की अवज्ञा की है और उनके उद्देश्यों को पराजित किया है—चाहे वे राजनेता हों, प्रशासक हों, भूमिपति हों या महाजन हों। वे बड़े किसान, जिन्होंने हदबन्दी कानून को बेनामी तथा फर्जी बन्दोबस्तियों के जरिये धोखा दिया है, वे भद्र लोग, जिन्होंने सरकारी जमीन और गांव की सामूहिक भूमि हड़प रखी है, वे भूमिपति, जिन्होंने अपने बटाईदारों को कानूनी हक देने से हमेशा इनकार किया है और उन्हें उनकी जमीन से बेदखल किया है तथा जो अपने मजदूरों को कम मजदूरी देते रहे हैं और उन्हें बासगीत भूमि से भी वंचित कर रखा है, वे व्यक्ति, जिन्होंने धोखाधड़ी या जबरदस्ती से कमजोर-वर्ग के लोगों की जमीन छीन ली है, वे तथाकथित ऊँची जाति के लोग जो हरिजन भाइयों को हमेशा घृणा की नजर से देखते रहे हैं, उनके साथ बुरा व्यवहार करते रहे हैं तथा उनके प्रति सामाजिक भेदभाव बरतते रहे हैं, वे महाजन जिन्होंने अत्यधिक ब्याज वसूल करते हुए गरीबों तथा कमजोरों की जमीन अधिकृत कर ली है, वे राजनेता, प्रशासक और सभी अन्य लोग जिन्होंने इन अन्यायपूर्ण कार्यों में मदद पहुंचायी है या उन्हें प्रोत्साहित किया है—ये सभी लोग इस स्थिति के लिए जिम्मेवार हैं कि आज गरीबों और दलितों के मन में अन्याय, दुःख और उत्पीड़न-जन्य भावना इकट्ठी हो गयी है जो अब हिंसा के रूप में बाहर निकलने का मार्ग ढूँढ़ रही है। इस स्थिति के लिए ये कानून की अदालतें और न्याय पाने की पद्धतियां तथा उसके लिए चुकाये जाने वाले मूल्य भी जिम्मेवार हैं, जिन्होंने हमारे समाज के दुर्बल वर्गों के साथ षड्यंत्रपूर्वक न्याय नहीं होने दिया है। फिर यह शिक्षा की व्यवस्था और नियोजन का ढंग भी जिम्मेवार है, जो अपने गलत तरीके से शिक्षित, निराश और बेकार युवकों को बढ़ती हुई सेना तैयार कर रहे हैं और आर्थिक विषमताओं को भी बढ़ा रहे हैं, जिसके फलस्वरूप विभिन्न वर्गों का और भी अधिक ध्रुवीकरण हो रहा है। और फिर ये राजनेता भी जिम्मेवार हैं, जिनकी स्वार्थ की भावना ने लोकतंत्र को, दलीय व्यवस्था को और उसकी विचारधाराओं को मजाक की वस्तु बना दिया है।

जब स्थिति ऐसी है और तब लोकतंत्र की संस्थाएं और प्रक्रियाएं इतने दयनीय रूप से त्रुटिपूर्ण हैं तो क्या आश्चर्य कि असंतोष, निराशा, क्षोभ और अभाव कुछ लोगों के दिमाग को हिंसा की तरफ मोड़ दे और वे उसको ही एकमात्र तारक शक्ति मान बैठें?

(जे.पी. का वर्ग-संघर्ष) ❑

स्मृति-शेष

विनोबा को देखा तो...जैसे गांधी को देखा

❑ राधा भट्ट

दुनिया के लिए गांधी और विनोबा इतिहास हो गये हैं। ऐसा इतिहास जो बीते काल के अंधकार में कहीं विलीन हो जाता है, किन्तु हमारे लिए आज भी वे हमारे भीतर जीवित हैं, अभी भी उनका जगमगाता हुआ प्रकाश जीवन को दिशा देता है। पिछले इतिहास की पुस्तकों को पढ़कर उनके विचारों से नहीं वरन उनके प्रत्यक्ष शब्दों से प्रेरणा पाकर, उनके साथ जी कर जो प्रकाश आत्मसात किया था, उसे ''स्विच ऑन'' करके उस रोशनी के पीछे-पीछे चलकर आज भी दिशा मिलने लगती है। पढ़िए ऐसी ही प्रेरणा से दुर्गम पहाड़ों में गांधी-विनोबा के रचनात्मक कार्यों को धरती पर उतारने की एक हृदय-स्पर्शी अद्‌भुत कहानी उन्हीं की जुबानी, जिस बेटी को कभी विनोबा ने 'हिमालय' की संज्ञा दी थी। **–का. सं.**

बीस वर्षों के बाद जब बौंगाड़ गई तो किशोर मंडल नहीं चलता था परंतु पुराने किशोरों के बच्चे किशोर हो चुके थे और वे सर्वधर्म प्रार्थना गाते थे। गांव वालों ने बताया कि गांव भर के ये किशोर एकत्र होकर बीच-बीच में सामूहिक सफाई का आयोजन करके गांव के रास्तों व पानी के स्थानों की सफाई का प्रबंध भी करते हैं।

हां, फिर उन प्रारम्भ के दिनों को देखें। ग्वालिन बालिकायें शाम का भोजन करके मेरे पास आतीं तब तक सांयकालीन प्रार्थना व चर्चा आदि पूरी करके सयाने लोग चले जाते थे और मैं भी किसी घर में खाना खाकर वापस आ जाती थी। तब लालटेन की रोशनी में ग्वालिनशाला शुरू होती। इतिहास, भूगोल, सामाजिक ज्ञान, पर्यावरण आदि विषय छोटी सरल कहानियों के रूप में मैं उन्हें बताती, वे कभी मुझसे गीत सीखतीं तो कभी कहानियां सुनतीं, फिर अपने घर से लाये कम्बल, चादर आदि में लिपटकर सो जातीं—पास में ही मेरा बिस्तर भी होता था, तो बातें चलती रहतीं, नींद से आंखें बंद होने पर ही उनकी जबान बंद होती। *उनके सवाल भी विशेष होते—''हम स्कूल में चली जायेंगी तो गायों को कौन देखेगा?'' ''गाय नहीं होगी, तो दूध नहीं होगा। तब हमें छाँछ और छोटे भईया को दूध कहां से मिलेगा?'' ''दीदी, हमारे सिर में जूं कहां से आ जाती है?'' ''दीदी आसाढ़ के सात दिन बीत गये वर्षा नहीं आयी। अब रोपाई कैसे लगेगी?'' आठ-दस वर्ष की बच्चियों के ये सयाने सवाल, उनका निश्चिन्त बचपन कहां गया? ''मैं सोचती थी।''*

सुबह उठकर वे शौच जातीं निश्चित रूप से कच्चे शौचालय में। मैं देखती उसके बाद मिट्टी से रगड़कर हाथ धोये कि नहीं—बाल संवारती, नाखून काटती और तैयार होकर एक घंटे तक अपनी पाटी में—लिखना-पढ़ना, गिनती-गणित आदि सीखतीं। इस एक घंटे की पाठशाला ने उनकी क्षमताएं बहुत बढ़ाई, पर उनकी जिम्मेवारी का भाव तो कुदरती तौर पर ही बढ़ा हुआ था। घंटा पूरा होता नहीं कि वे पाटी से सिर उठाकर लगभग एक साथ कहतीं, ''अरेरेरे, घाम इतना चढ़ गया, गायों को खोलने के लिए देर हो जायेगी।'' बड़ी मुश्किल से इनके माता-पिता को मनाकर मैं इन्हें 3 दिनों के लिए लक्ष्मी आश्रम दिखाने ले गयी, पूरे दिन भर बस की यात्रा करने का इनका पहला मौका था। ये थक गयीं, पर दूसरे दिन आश्रम बालिकाओं के साथ उनके नृत्यगीत देखकर खूब खुश हो गयीं।

बाद में इनमें से कुछ लड़कियां पास के प्रायमरी स्कूल में माँ-बाप से जिद्द करके पढ़ने को गयीं। कुछों ने लक्ष्मी आश्रम में पढ़ने जाने के लिए अपने परिवारों को मना लिया। उनमें कुछ बड़ी होकर बहुत प्रखर बनीं जो सामाजिक मूल्यों के दकियानूसी जीवन को बदलने के लिए दृढ़ता से जूझीं।

नाश्ता करके ये किशोरियां गायों के साथ जंगल की ओर जातीं और मैं महिलाओं के साथ उनके श्रम कार्यों में जुड़ जाती। पन्द्रह- बीस महिलाएं एक साथ जंगल से चारापत्ती लेने जातीं तो मैं भी किसी घर से रस्सी व दराँती मांगकर उनके साथ चली जाती। मुझे रस्सी दराँती देने की होड़ लग जाती क्योंकि रस्सी दराँती वालों के आँगन में ही मैं चारापत्ती का बड़ा-सा गट्ठर डाल देती थी। जंगल में सब महिलाएं कुछ देर एक साथ बैठतीं, तब मैं मौका पाकर उन्हें गांधी, कस्तूरबा, विनोबा की कहानियां सुनाती और उन्हीं में भूदान, ग्रामदान की कथाएं भी जुड़ जातीं, इन्हीं अनौपचारिक बातों के बीच उन्होंने अपने ग्रामदान की दुर्दशा की बात उठायी, साथ ही उसे सुधारने का तरीका भी सोचा। गांव का प्रधान ही वन सरपंच होने से वह वन के प्रति संवेदनशील नहीं है, यह निष्कर्ष भी उन्होंने निकाला। एक दिन जब पड़ोसी गांव की महिलाओं की लम्बी कतार बौंगाड़ ग्रामवन से चारापत्ती व कच्ची लकड़ी के गट्ठर ले जा रही थीं तो उनके गट्ठर इन्होंने उतरवा दिये। *एक सयानी महिला सरपंच को बुलाने गयी। वह सोया था, उसके पैर का अँगूठा जोर से हिलाकर बोलीं, ''इस गांव का प्रधान सो गया है, इसीलिए इस गांव का भाग्य भी सो गया है, उठो और चलो'', उस दिन महिलाओं ने सारा गांव साथ बिठाया, वे खूब बोलीं। सब स्त्री-पुरुषों ने उनकी बातों को न्याययुक्त बताया। उस दिन महिलाओं ने ग्राम की वन पंचायत का नेतृत्व संभाला। उत्तराखंड के प्रसिद्ध चिपको आंदोलन से पहले यह एक छोटा चिपको आंदोलन सफलता से सम्पन्न हुआ।* इस घटना

के साथ ही महिलाएं गांव के मुद्दों पर सोचने-विचारने व अपने निर्णय देने लगीं, मेरे मन में भरोसा जाग गया कि महिलाएं आगे बढ़कर गांव को गोकुल बनायेंगी।

महिलाओं से नई-नई अपेक्षाएं रखने के पूर्व मैं उनकी रोजमर्रा की कठिनाइयों की स्वयं अनुभूति करना चाहती थी, मैं समझती हूं कार्यकर्ता यानी सेवक को अपने सेव्य के निकट से निकट जीना चाहिए—''हम जिनकी सेवा करना चाहते हैं उनसे कभी अलग न पड़ जायँ।'' सेवक की यह प्रार्थना मेरे मन में रहती थी। मैं बचपन से श्रमिक रही हूं पर गांव की महिला का श्रम तो और भी दुस्तर था। गेहूं कटाई वैशाख माह की तेज धूप में घंटों तक करते रहना और आषाढ़ की गर्मी में धान रोपाई के लिए कीचड़ भरे खेतों में खड़े होकर दिन भर झुके-झुके धान रोपना वास्तव में कठोरतम श्रम कार्य थे। मुझे हर परिवार की मदद करनी थी अतः लगातार पन्द्रह दिनों तक किये इस श्रम ने मुझे सिखा दिया कि जीवनभर ऐसा श्रम करके हमें अन्न खिलाने वालों की कितनी अधिक प्रतिष्ठा हमें करनी चाहिए—इन दो सप्ताहों में मेरा चेहरा खेत से उठने वाली भाप से झुंलसा दिया था व घंटों-घंटों धूप में तपने से सिर में दर्द पैदा कर दिया था। पर वह ग्राम परिवार मेरी सेवा करने को दिलों जान से तत्पर था। विनोबा हमें यही सिखाना चाहते थे।

मेरा एक दिन का भोजन एक ऐसे परिवार में था, जो अधिक परिवार सदस्य, कम भूमि और अन्य आय न होने से गरीब स्थिति में था। घर की दादी ने बड़े प्यार से छोटी पतीली में मेरे लिए चावल पकाये थे और एक बड़ी कढ़ाई में थोड़े से चावल और थोड़ी पिसी हुई दाल में ढेर सारा पानी डालकर पतला पेट भरूवा खाना बनाया था।

मैंने कहा, ''कढ़ाई में क्या बना है? मुझे वही दीजिए।'' अम्मा बोलीं, ''नहीं, नहीं, बेटा तुम्हारे लिए तो पतीली में पका चावल है, कढ़ाई में तो हम 'गरीबों का खाना' है। तुम्हारे लिए उसमें पड़ी मिर्ची भी शायद ज्यादा होगी।'' 'गरीबों का खाना' मैं न खाऊं तो मैं यहां आयी क्यों हूं? फिर जनाधार का अर्थ ही क्या रहा? यह सोचकर मैंने जिद की और वह पतला परंतु चटपटा व्यंजन खाया। दो घंटे के बाद मुझे भूख लग गयी। आखिर उस खाने में पानी ही तो था—बेचारी बहुएँ ऐसा खाकर दिनभर श्रम ही नहीं पशुतुल्य श्रम करती थीं। तभी तो वे चालीस वर्ष की उम्र में ही बूढ़ी हो जाती थीं। जीवन की वास्तविकताओं का धरातल कितना कठोर था?

गांव की रोजमर्रा की जिन्दगी को अपने दृष्टिकोण से देखकर मैं शाम को प्रार्थना में आये परिवारों के मालिकों, पतियों, पिताओं व भाइयों को बताती थी—तो 'ऐसा तो हमने कभी सोचा ही नहीं' बोलकर वे चुप हो जाते थे। अपनी माताओं, पत्नियों, बहुओं व बेटियों के प्रति दृष्टिकोण बदलने की उन्हें जरूरत थी, इसे उन्होंने महसूस किया था। धीरे से कुछ समय बाद लड़कियां पढ़ने जाने लगी थीं। *साथ ही चर्चा होने लगी कि महिलाओं को भारी श्रम के बोझ से मुक्त करने के लिए कुछ ग्रामोद्योग व खादी के काम प्रारम्भ किये जाएं—इस विचार की ही निष्पत्ति था, 'बेरीनाग ग्राम स्वराज्य मंडल', जो पहले मात्र पुंगराऊ घाटी ग्राम स्वराज्य इकाई था। बाद में पूरे बेरीनाग प्रखंड तक फैलकर बेरीनाग ग्राम स्वराज्य मंडल बना। बेरीनाग प्रखंड के कर्मठ व समझदार लोग इस मंडल के अध्यक्ष मंत्री एवं सदस्य थे। पूरे प्रखंड के लिए एक यह नई रचना थी। नया ही विचार था। हर दुकान, सभा, सम्मेलनों व गांवों के आयोजनों में बस यही चर्चा थी। बौंगाड़ गांव को केन्द्र में रखकर मानो पूरा प्रखंड जागृत हो उठा था।* बौंगाड़ के सयानों को बड़ी जिम्मेवारी महसूस हो रही थी, और वे हर संभव करने को तैयार थे। एक स्थानीय बांस प्रजाति 'रिंगाल' की टोकरियां व चटाइयां बनायी जाती थीं, उसे अपना ग्रामोद्योग मानकर बौंगाड़ के हर परिवार ने कई-कई रिंगाल की पौध अपने खेतों के किनारों पर रोपी थी—उनके गांवों में धान, गेहूं, दाल उगाने की परम्परा थी किन्तु न तो वे इफरात से सब्जी की खेती करते थे न ही फलों की। इन दोनों को उगाने का प्रचलन प्रारम्भ कराया गया, इसमें सबसे अधिक उत्साह से मेहनत करने वाले किशोर मंडल के बालक, बालिकाएं थीं। महिलाएं सिलाई सीखने की मांग करने लगीं और पुरुष खादी का काम सीखने की ख्वाहिश प्रकट करने लगे। अतः गांव के दो नौजवान खादी व ग्रामोद्योग का प्रशिक्षण लेने सेवापुरी, बनारस भेजे गये।

पूरी घाटी के लिए बौंगाड़ एक नमूना-सा बनता जा रहा था। पर कुछ समय बाद प्रवृत्तियों का केन्द्र प्रखंड के केन्द्र में और मोटर रोड के पास ले जाने का विचार सामने आया। तब से बौंगाड़ सारी प्रवृत्तियों का हृदयस्थल नहीं रहा—वरन बेरीनाग स्वराज्य मंडल का प्रधान केन्द्र वहां से हटकर मोटर रोड के किनारे बसे गांव कांडे किरौली चला गया—ग्राम स्वराज्य मंडल की प्रवृत्तियां बढ़ती गयीं और बौगाड़ ने जिन दैनिक प्रवृत्तियों व महिलाओं व पुरुषों के सामूहिक कामों को तहे दिल से स्वीकार कर लिया था वे उन्हें करते रहे, सर्वधर्म प्रार्थना, स्वच्छता, शौचालय व स्नानगृह तथा खेती व वन संरक्षण की सारी व्यवस्थाएं वे लोग मिलकर चलाते रहे। सत्याग्रह की प्रेरणा भी उनमें पुष्ट हो गयी थी। उनके निकटस्थ बाजार में खुली शराब की दुकान पर सफल सत्याग्रह में उन्होंने पूरी घाटी और पूरे प्रखंड के स्त्री-पुरुषों को एकत्र कर लिया था। उन्होंने मोटर रोड की पैमाइश में खेती की उपजाऊ भूमि और घने जंगल के कटने, बरबाद होने की आवाज उठायी। मोटर रोड को वैकल्पिक दिशा दी जहां से खेतों के कटने का भय न था। वन का भी एक छोटा-सा भाग ही कटने वाला था। मेरी गैरहाजिरी में उन्होंने अपने आंदोलन को स्वयं नेतृत्व देकर उसे सफल किया था।

लक्ष्मी आश्रम में कार्यकर्ता बहनों की कमी हो जाने के कारण पू. सरला बहनजी को दिक्कत का सामना करना पड़ रहा था। अतः उन्होंने मुझे वापस आश्रम में बुला लिया—मेरे लिए पांच साल के हार्दिक संबंध को तोड़ना कठिन था, और गांववासियों, महिलाओं ही नहीं पुरुषों के लिए भी मेरी विदाई रूलाने वाली हो गयी थी। मैं उस दिन से आंसुओं से नहाये उन चेहरों को भूल नहीं पाती।

लक्ष्मी आश्रम के बौंगाड़ व बेरीनाग ग्राम स्वराज्य मंडल को अगले कुछ वर्षों तक पूरा साथ दिया, तब तक कि मंडल अपने पैरों पर खड़ा न हो गया। ❑

4 अक्टूबर : विश्व पशु कल्याण-दिवस

गो-रक्षा

❑ महात्मा गांधी

''हिन्दुस्तान में गाय ही मनुष्य का सबसे अच्छा साथी, सबसे बड़ा आधार था। यही हिन्दुस्तान की एक कामधेनु थी। वह सिर्फ दूध ही नहीं देती थी, बल्कि सारी खेती का आधार-स्तम्भ थी। गाय दया-धर्म की मूर्तिमन्त कविता है।''

फिर हिन्दुस्तान में अनगिनत पशुधन है, जिसकी तरफ हमने ध्यान न देकर गुनाह किया है।...गोरक्षा मुझे मनुष्य के सारे विकास-क्रम में सबसे अलौकिक वस्तु मालूम हुई है। गाय का अर्थ मैं मनुष्य से नीचे की सारी गूँगी दुनिया करता हूं। इसमें गाय के बहाने इस तत्त्व द्वारा मनुष्य को सम्पूर्ण चेतन-सृष्टि के साथ आत्मीयता का अनुभव कराने का प्रयत्न है। मुझे तो यह भी स्पष्ट दीखता है कि गाय को ही यह भेदभाव क्यों प्रदान किया होगा। *हिन्दुस्तान में गाय ही मनुष्य का सबसे अच्छा साथी, सबसे बड़ा आधार था। यही हिन्दुस्तान की एक कामधेनु थी। वह सिर्फ दूध ही नहीं देती थी, बल्कि सारी खेती का आधार-स्तम्भ थी। गाय दया-धर्म की मूर्तिमन्त कविता है।* इस गरीब और शरीफ जानवर में हम केवल दया ही उमड़ती देखते हैं। यह लाखों-करोड़ों हिन्दुस्तानियों को पालने वाली माता है। इस गाय की रक्षा करना ईश्वर की सारी मूक सृष्टि की रक्षा करना है। जिस अज्ञात ऋषि या द्रष्टा ने गोपूजा चलायी उसने गाय से (सिर्फ) शुरुआत की। इसके सिवा और कोई ध्येय हो ही नहीं सकता है। इस पशुसृष्टि की फरियाद मूक होने से और भी प्रभावशाली है। गोरक्षा हिन्दू-धर्म की दुनिया को दी हुई एक कीमती भेंट है।

गोमाता जन्म देने वाली माँ से कहीं बढ़कर है। माँ तो साल-दो-साल दूध पिलाकर हमसे फिर जीवनभर सेवा की आशा रखती है। पर गोमाता को सिवा दाने और घास के कोई सेवा की आवश्यकता ही नहीं। माँ की तो हमें उसकी बीमारी में सेवा करनी पड़ती है। परंतु गोमाता स्वयं केवल जीवन-पर्यन्त हमारी अटूट सेवा ही नहीं करती, बल्कि उसके मरने के बाद भी हम उसके मांस, चर्म, हड्डी, सींग आदि से अनेक लाभ उठाते हैं। यह सब मैं जन्मदात्री माता का दरजा कम करने को नहीं कहता, बल्कि यह दिखाने के लिए कहता हूं कि गोमाता हमारे लिए कितनी पूज्य है।

हमारे ढोरों की दुर्दशा के लिए अपनी गरीबी का राग हम नहीं अलाप सकते। यह हमारी निर्दय लापरवाही के सिवा और किसी भी बात की सूचक नहीं है। हालांकि हमारे पिंजरापोल हमारी दयावृत्ति पर खड़ी हुई संस्थाएं हैं, तो भी वे उस वृत्ति का अत्यन्त भद्दा अमल करने वाली संस्थाएं ही हैं। वे आदर्श गोशालाओं या डेरियों और समृद्ध राष्ट्रीय संस्थाओं के रूप में चलने के बजाय केवल लूले-लँगड़े ढोर रखने के धर्मादा खाते बन गये हैं। गोरक्षा के धर्म का दावा करते हुए भी हमने गाय और उसकी सन्तान को गुलाम बनाया है और हम खुद भी गुलाम बन गये हैं।

सवाल यह (किया जाता) है कि जब गाय अपने पालन-पोषण के खर्च से भी कम दूध देने लगती है या दूसरी तरफ से नुकसान पहुंचाने वाला बोझ बन जाती है, तब बिना मारे उसे कैसे बचाया जा सकता है? इस सवाल का जवाब थोड़े में इस तरह दिया जा सकता है कि जानवरों के पालन-पोषण का विज्ञान सीखकर गाय की रक्षा की जा सकती है। आज तो इस काम में पूरी अंधाधुंधी चलती है।...हिन्दू गाय और उसकी सन्तान की तरफ अपना फर्ज पूरा करके उसे बचा सकते हैं। अगर वे ऐसा करें तो हमारे जानवर हिन्दुस्तान और दुनिया के गौरव बन सकते हैं। आज उससे बिलकुल उल्टा हो रहा है।

(फिर) हिन्दुस्तान के सारे पिंजरापोलों का पूरा-पूरा सुधार किया जाना चाहिए। आज तो हर जगह पिंजरापोल का इन्तजाम ऐसे लोग करते हैं, जिसके पास न कोई योजना होती है और न ये अपने काम की जानकारी ही रखते हैं।

ऊपर बतायी हुई बातों के पीछे एक खास चीज है। यह है अहिंसा, जिसे दूसरे

शब्दों में प्राणीमात्र पर दया कहा जाता है। अगर इस सबसे बड़े महत्त्व की बात को समझ लिया जाय, तो दूसरी सब बातें आसान बन जाती हैं। *जहां अहिंसा है वहां अपार धीरज, भीतरी शांति, भले-बुरे का ज्ञान, आत्म-त्याग और सच्ची जानकारी भी है। गोरक्षा कोई आसान काम नहीं है। उसके नाम पर देश में बहुत पैसा बरबाद किया जाता है। फिर भी अहिंसा (का भान) न होने से हिन्दू गाय के रक्षक के बजाय उसके नाश करने वाले बन गये हैं। गोरक्षा का काम हिन्दुस्तान से विदेशी हुकूमत को हटाने के काम से भी ज्यादा कठिन है।*

मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि हम भैंस के दूध-घी का कितना पक्षपात करते हैं! असल में हम निकट का स्वार्थ देखते हैं, दूर के लाभ का विचार नहीं करते। नहीं तो यह साफ है कि अंत में गाय ही ज्यादा उपयोगी है। गाय के घी और मक्खन में एक खास तरह का पीला रंग होता है, जिसमें भैंस के मक्खन से कहीं अधिक कैरोटीन यानी विटामिन 'ए' रहता है। उसमें एक खास तरह का स्वाद भी है। मुझसे मिलने आने वाले विदेशी यात्री सेवाग्राम में गाय का शुद्ध दूध पीकर खुश हो जाते हैं। और यूरोप में तो भैंस के घी और मक्खन के बारे में कोई जानता ही नहीं। हिन्दुस्तान ही ऐसा देश है, जहां भैंस का घी-दूध इतना पसन्द किया जाता है। इससे गाय की बरबादी हुई है। इसलिए मैं कहता हूं कि हम सिर्फ गाय पर जोर न देंगे, तो गाय नहीं बच सकेगी।

गोवधबन्दी

मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि कानून बनाकर गोवध बन्द कराने से गोरक्षा नहीं हो जाती। वह तो गोरक्षा के काम का छोटे-से-छोटा भाग है।...लोग ऐसा मानते दीखते हैं कि किसी भी बुराई के विरुद्ध कोई कानून बना कि तुरन्त वह बिना किसी झंझट के मिट जायेगी। ऐसी भयंकर आत्म-वंचना और कोई नहीं हो सकती। किसी दुष्ट बुद्धि वाले अज्ञानी या छोटे-से समाज के खिलाफ कानून बनाया जाता है और उसका असर भी होता है। लेकिन जिस कानून के विरुद्ध समझदार और संगठित लोकमत हो, या धर्म के बहाने छोटे-से-छोटे मण्डल का भी विरोध हो, वह कानून सफल नहीं होता। गोरक्षा के प्रश्न का जैसे-जैसे मैं अधिक अध्ययन करता जाता हूं, वैसे-वैसे मेरा यह मत दृढ़ होता जाता है कि गांवों और उनकी जनता की रक्षा तभी हो सकती है, जब कि मेरी ऊपरी बतायी हुई दिशा में निरन्तर प्रयत्न किया जाय।

प्रत्येक किसान अपने घर में गाय-बैल रखकर उनका पालन भलीभांति और शास्त्रीय पद्धति से नहीं कर सकता। गोवंश के ह्रास के अनेक कारणों में व्यक्तिगत गोपालन भी एक कारण रहा है। यह बोझ वैयक्तिक किसान की शक्ति के बिलकुल बाहर है।...

हमारी आबादी बढ़ती जा रही है और उसके साथ किसान की व्यक्तिगत जमीन कम होती जा रही है। नतीजा यह हुआ कि प्रत्येक किसान के पास जितनी चाहिए उतनी जमीन नहीं है। ऐसा किसान अपने घर में या खेत पर गाय-बैल नहीं रख सकता। रखता है तो अपने हाथों अपनी बरबादी को न्योता भी देता है। आज हिन्दुस्तान की यही हालत है। *धर्म, दया या नीति की परवाह न करने वाला अर्थशास्त्र तो पुकार-पुकार कर कहता है कि आज हिन्दुस्तान में लाखों पशु मनुष्य को खा रहे हैं। क्योंकि उनसे कुछ लाभ न पहुंचने पर भी उन्हें खिलाना तो पड़ता ही है। इसलिए उन्हें मार डालना चाहिए। लेकिन धर्म कहो, नीति कहो या दया कहो, ये हमें इन निकम्मे पशुओं को मारने से रोकते हैं।*

इस हालत में क्या किया जाय? यही कि जितना प्रयत्न पशुओं को जीवित रखने और उन्हें बोझ न बनने देने का हो सकता है, उतना किया जाय। इस प्रयत्न में सहयोग का बड़ा महत्त्व है। *सहयोग अथवा सामुदायिक पद्धति से पशुपालन करने से अनेक लाभ हैं। मेरा तो विश्वास है कि हम अपनी जमीन को (भी जब) सामुदायिक पद्धति से जोतेंगे, तभी उससे पूरा फायदा उठा सकेंगे। गांव की खेती अलग-अलग सौ टुकड़ों में बँट जाय, इसके बनिस्बत क्या यह बेहतर नहीं होगा कि सौ कुटुम्ब सारे गांव की खेती सहयोग से करें और उसकी आमदनी आपस में बाँट लिया करें। और जो खेती के लिए सच है, वह पशुओं के लिए भी सच है।*

यह दूसरी बात है कि आज लोगों को सहयोग की पद्धति पर लाने में कठिनाई है। कठिनाई तो सभी सच्चे और अच्छे कामों में होती है। गो-सेवा के सभी अंग कठिन हैं। कठिनाइयां दूर करने से ही सेवा मार्ग सुगम बन सकता है। यहां तो मुझे इतना ही बताना था कि...वैयक्तिक पद्धति गलत है, सामुदायिक सही है। व्यक्ति अपनी स्वातंत्र्य की रक्षा भी सहयोग को स्वीकार करके ही कर सकता है। अतएव सामुदायिक पद्धति अहिंसात्मक है, वैयक्तिक हिंसात्मक। ❑

आस्तिक बनाम नास्तिक

गोरा बनाम गांधी बनाम गॉड

❑ जी. रामचन्द्र राव (गोरा)

पिछले दिनों 6'9 सितंबर, 14 तक मुझे स्व. 'गोरा' के पुत्र विश्व के महान नास्तिक 'लवणम' के साथ कोसानी में रहने का सुअवसर मिला। हाँलाकि गोरा-गांधी वार्ता के प्रति मेरा आकर्षण पूर्व से ही था और यह मिलना सहज एक संयोग है। 'गांधी बनाम गोरा बनाम गॉड' आलेख गांधीजी के साथ गोरा (जी. रामचन्द्र राव) की नास्तिकवादी दृष्टि के विषय में हुई बातचीत पर आधारित है, जिससे गोरा में आपको एक अत्यन्त ईमानदार' 'सत्य-शोधक' का परिचय मिलेगा। यह एक गाथा है एक नास्तिक की आस्था का, जो एक आस्तिक गांधी के प्रति रही। –का. सं.

गांधीजी की हत्या से मानव-संस्कृति की तो बहुत बड़ी हानि हुई ही, नास्तिकवाद को भी उससे कम हानि नहीं पहुंची। मैं बड़ी उत्सुकता से उस दिन की राह देख रहा था, जब उनसे नास्तिकवाद पर विस्तार से चर्चा करता। मैं उनके निकट आ चुका था। यह चर्चा हुई होती, तो उनके और भी निकट आता। यह बात मैं उनके साथ अपने अब तक के अनुभव के बल पर विश्वास के साथ कह सकता हूं। न उन्हें मेरे नास्तिकवाद से कोई अरुचि हुई, न मुझे उनके भगवान ने डराया। किसी सिद्धान्त का मूल्य उनके लिए उसकी कल्याणकारी शक्ति में था; निरी तात्त्विक या बौद्धिक चर्चा में उन्हें रस नहीं था, और न उसके कारण वे उस सिद्धांत के प्रति आकर्षित होते थे। मानवता का कल्याण उनकी प्रधान चिन्ता थी। इसी कारण वे निःसंकोच कह सकते थे, ''न तो मैं यही कह सकता हूं कि मेरी आस्तिकता सही है, न यही कि तुम्हारी नास्तिकता गलत है।'' वे मतान्ध नहीं थे कि पद्धतियों पर लड़ते, न वे कवि थे कि आदर्श के स्तुतिगान में मग्न रहते। वे थे द्रष्टा, जिन्हें मानवता की प्रगति की दिशा दीखती थी। मानव-कल्याण में सहायक किसी प्रवृत्ति की उन्होंने निन्दा नहीं की, बल्कि उसकी मदद की, भले ही उसकी पद्धति से उनका कितना भी भेद रहा हो। मेरी समझ में उनकी ईश्वर की कल्पना और नास्तिकवाद के प्रति उनकी धारणा, दोनों इसी मानव-हितवादी दृष्टिकोण पर आश्रित थी।

इसके सिवा, वे प्रधानतः एक व्यावहारिक आदमी थे। और व्यावहारिक आदमी की रीति के अनुसार वे किसी परिस्थिति को उसके भीतर रहे हुए विरोधों के साथ स्वीकार कर लेते थे। बुद्धिवादी की तरह वे बुद्धि के जरिये इन विरोधों की छानबीन नहीं करते बैठते थे; वे परिस्थिति को उसके प्रचलित रूप में ग्रहण करने के बाद उसे मानव-जाति के कल्याण की दिशा में मोड़ने और बढ़ाने की कोशिश करते थे। वे किसी चीज को बिना प्रयोग किये यों ही नहीं छोड़ देते थे; उन्हें इस बात का खयाल रहता था कि गलत निर्णय के कारण एक सही ध्येय की हानि नहीं होनी चाहिए। जब ये प्रगति के साथ न चल सकें, तब इन चीजों को वे अपने-आप गिर जाने देते थे। कोई चीज योग्य है या नहीं, इसकी जांच के लिए उनकी कसौटी थी प्रयोग। किसी वस्तु के स्वीकार या अस्वीकार में वे बौद्धिक या भावना-मूलक विचारों की अपेक्षा उसकी व्यावहारिक उपयोगिता को अधिक महत्त्व देते थे। वे चिकित्सा की किसी भी पद्धति का मूल्य उसकी रोग-निवारण की शक्ति के आधार पर आंकते थे। किसी ध्येय के हिमायती को वे उसके काम की कसौटी पर कसते थे। उन्होंने मुझे मेंढक की चीर-फाड़ की इजाजत दी थी, जब उन्होंने देखा कि उसका व्यावहारिक उपयोग है।

उनका यह दृष्टिकोण और काम करने की यह पद्धति हरिजन-सेवक संघ की 14-8-'45 की बैठक में उनके द्वारा दिये गये प्रश्नों के उत्तरों में अच्छी तरह लक्षित होती है। जब उन्होंने पहले-पहल अस्पृश्यता-निवारण का काम शुरू किया, तब भी वर्ण-धर्म (जात-पाँत) की समस्या तो थी ही। बुद्धि के जरिये उस समय भी यह सहज दिखायी पड़ता था कि अगर छुआछूत को नेस्तनाबूद करना है, तो जातियों को भी जड़-मूल से मिटाना होगा। लेकिन जात-पाँत उस समय तात्कालिक समस्या नहीं थी; अभी क्या करना है, इस प्रश्न के विचार में उसका समावेश नहीं था। समस्या तब सिर्फ अस्पृश्यता-निवारण की थी। इसलिए यद्यपि जात-पाँत का भेद वे उस समय भी खुद रखते नहीं थे, पर उस पर उन्होंने हमला नहीं किया। इस तरह अस्पृश्यता-निवारण का काम अपनी प्रारम्भिक मंजिलों में जात-पांत की प्रथा के भीतरी विरोधों को रहने देकर बढ़ता रहा। इसमें लाभ यह हुआ कि जो लोग जाति-प्रथा के विसर्जन का विरोध करते, उनसे संघर्ष नहीं हुआ और आंदोलन एक बड़ी उलझन से बच गया। लेकिन जब उन्होंने देखा कि वह अवस्था आ गयी है, जब जातिगत भेद प्रगति की अगली मंजिल में बाधक हो रहे हैं, तब उन्होंने साफ कह दिया कि जात-पाँत को जड़-मूल से नष्ट होना चाहिए। और इसके लिए सम्मिलित भोजन और अंतर-जातीय विवाह प्रारम्भ करने की सलाह दी। *निरे बौद्धिक लोग कहेंगे कि गांधी ने शुरू में जात-पाँत के प्रति अविरोध का भाव रखा और बाद में उसकी निन्दा की, इसमें उनके बरताव में विसंगति दीखती है। लेकिन व्यावहारिक दृष्टि रखने वाले अहिंसा के अनुयायी के लिए ये प्रगति-पथ की क्रमिक मंजिलें हैं, उसे इनमें कोई विरोध नहीं दीखता।*

इसी तरह जब उन्होंने भारतीय स्वातंत्र्य-आंदोलन के सूत्र संभाले, तब उन्होंने जनता में 'रघुपति राघव राजा राम' वाली भक्ति की प्रतिष्ठा देखी। उन्होंने इस विश्वास को, जिसे वे खुद भी अपने ढंग से मानते थे, तब तक

चलने दिया जब तक कि स्वतंत्रता आंदोलन के मार्ग में वह बाधक नहीं हुआ। यहां तक कि कांग्रेस के प्रतिज्ञा-पत्र में भी भगवान का नाम लिया गया और उसकी कृपा की याचना की गयी। लेकिन जब उसका विरोध हुआ, तो उन्होंने उसे कबूल किया : *''यदि अपने विवेक या अपनी मान्यताओं के प्रति वफादारी के कारणों से इसका विरोध किया जा रहा है, तो आवश्यक होने पर ईश्वर के नाम का उल्लेख इस प्रतिज्ञा-पत्र में से हटाया जा सकता है, यद्यपि मुझे इसका अभिमान है कि मैंने ही उसे शामिल कराया था। यदि ऐसा आक्षेप उसी समय आया होता, तो मैंने उसे तब भी एकदम मान लिया होता।'' (यंग इंडिया, 5-3-'25)*

एक और उदाहरण देता हूं। सन् 1946 की बात है। कांग्रेस तब 1942 के स्वातंत्र्य-युद्ध के बाद अस्त-व्यस्त हालत में थी। गांधीजी ने उस वर्ष के स्वतंत्रता-दिन (जनवरी 26) की प्रतिज्ञा के लिए एक विशेष प्रतिज्ञा-पत्र का सुझाव किया। इस प्रतिज्ञा-पत्र में भी ईश्वर का उल्लेख था। यह प्रतिज्ञा-पत्र प्रकाशित हुआ था। बातचीत में मैंने श्री प्रभाकरजी का ध्यान उसकी ओर खींचा और बताया कि मेरी इच्छा उस प्रतिज्ञा को लेने की है, लेकिन उसमें ईश्वर का उल्लेख होने के कारण पूरी प्रतिज्ञा दुहराना मेरे लिए सम्भव नहीं है। श्री प्रभाकर यह बात गांधीजी के पास ले गये। बापूजी ने उत्तर लिखा : *''अपने भीतर हमें किसी शुभ शक्ति की अनुभूति होती है, उसे हम भगवान की कहें या न कहें; प्रतिज्ञा की पूर्ति में इसी शक्ति की सहायता मैंने मांगी है। वह (यानी मैं) भगवान की जगह उसी का उल्लेख कर सकते हैं। सब सच्चे नास्तिकवादी यह जानते हैं कि उनके भीतर कोई शक्ति है।''*

कहने की आवश्यकता नहीं कि 'सब सच्चे नास्तिकवादी यह जानते हैं कि उनके भीतर कोई शक्ति है' इस वाक्य के पीछे गांधीजी का नास्तिकवादी दृष्टिकोण की जो कल्पना दीखती है, उससे वह बहुत भिन्न होता है। वास्तव में नास्तिकवाद मनुष्य के इच्छा-स्वातंत्र्य की अभिव्यक्ति है। 'शक्ति जिसे हम भगवान की कहें या न कहें', यह कल्पना मनुष्य और उसके जीवन को उस शक्ति के अधीन मानती है, और इस तरह फिर से आस्तिकवाद को अवकाश देती है। इसलिए कांग्रेस के प्रतिज्ञा-पत्र में भगवान की जगह हो विकल्प बापूजी ने रखा, वह नास्तिकवाद की मान्यताओं के अनुरूप नहीं था।

लेकिन उनका यह सुझाव ईश्वरवादी था या नास्तिकवादी, इस चर्चा को छोड़ दें तो खयाल करने की बात यह है कि मेरे साथ मेल बिठाने के लिए वे 'भगवान' का आग्रह छोड़ उस शक्ति पर आ गये 'जिसे हम भगवान की कहें या न कहें।' इससे मैं यह परिणाम निकालता हूं कि भगवान संबंधी कल्पना का उनके मन में उतना महत्त्व नहीं था, जितना उस बात का कि ऐसा विश्वास या अविश्वास मानव-कल्याण की वृद्धि में कितना सहायक होता है। शायद इसी उद्देश्य से वे मेरी लड़की की विवाह-विधि में भगवान का उल्लेख छोड़ने पर राजी हो गये थे और उन्होंने मेरे दामाद को आश्रम की प्रार्थनाओं में, प्रार्थना के श्लोक, भजन आदि बिना कहे, बैठने की अनुमति दी थी; और शायद यही कारण था कि उन्होंने अपने को अति-नास्तिक बताया और अंत में यह भी कहा कि ''अगर नास्तिक बनने से साम्प्रदायिक नफरत और दंगा-फसाद रोका जा सके तो सब लोग नास्तिक ही हो जायं।''

कहां 'रघुपति राघव' और कहां 'नास्तिकवाद'? दोनों में कितनी दूरी है? लेकिन बापू थे मुख्यतः व्यावहारिक मानव-धर्मवादी। जहां और जब उन्हें लगता था कि मानव-कल्याण के हित में दोनों में समझौता होना चाहिए, वे उसके लिए आसानी से तैयार हो जाते थे। अपनी जानकारी की सीमा के भीतर, मैं कह सकता हूं कि 1941 से 1948 की अवधि में नास्तिकवाद के प्रति उनके दृष्टिकोण में नजर आने लायक फर्क हुआ। अपने 11-9-'41 के पत्र में उन्होंने मुझे लिखा था, ''नास्तिकता में स्वयं अपने अस्तित्व का ही अस्वीकार है। उसके प्रचार में कोई सफल नहीं हुआ।'' सन् 1946 में मेरे साथ अपना मतभेद दृढ़तापूर्वक जाहिर करने के बावजूद वे इस प्रश्न का निर्णय भविष्य पर छोड़ने के लिए राजी थे कि ईश्वरवादी और नास्तिकवादी विचारों में बेहतर कौन सा है। और सन् 1948 में वे मेरी लड़की का विवाह विवाह-विधि में भगवान का उल्लेख छोड़कर करने के लिए तैयार हो गये।

इस तरह बापू का मानस 'निरन्तर विकास, निरन्तर प्रगति कर रहा था' (हरिजन 28-7-'48)। वे दुनिया को आगे ले जा रहे थे, और उसके साथ खुद भी आगे बढ़ रहे थे। *अपना काम उन्होंने उस समाज से शुरू किया, जिसका विश्वास 'रघुपति राघव'—रूपी ईश्वर में था। इस राह पर बढ़ते हुए उन्होंने 'ईश्वर सत्यरूप है' और 'सत्य ही ईश्वर है' की मंजिलें पार कीं। प्रगति की राह को रोकने वाली पुरानी विधियों या मान्यताओं को उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया। अगर उन्हें महसूस होता कि मानवता की प्रगति के लिए ईश्वर में विश्वास को बिलकुल छोड़ देने की जरूरत है, तो मेरा विश्वास है कि वे ऐसा करने में हिचकिचाये न होते।*

वे स्वीकार करते थे कि ईश्वर में श्रद्धा और नास्तिकता जीवन को देखने की दो विभिन्न दृष्टियां हैं। वे ईश्वरवादी थे। उन्होंने उस विचारधारा का अनुगमन किया, और उसके सहारे वे आगे बढ़े। नास्तिकवाद हमें प्रगति के पथ पर ईश्वरवाद से भी आगे ले जा सकता है, इसमें उन्हें शंका थी। और अपने 9-4-'46 के पत्र में वह शंका उन्होंने जाहिर भी की थी। अब यह जिम्मेदारी नास्तिकवादियों की है कि वे काम करें और प्रत्यक्ष जीवन में गांधीजी द्वारा प्रकट की गयी शंका को निराधार सिद्ध करें।

बापू आज हमारे काम में हमारी सहायता के लिए नहीं हैं, लेकिन हमारे मार्गदर्शन के लिए उनकी कार्य-पद्धति तो है ही। ❑

(गांधी-नास्तिक-संवाद)

गतिविधियां एवं समाचार

आज भी गांधी प्रासंगिक हैं

गांधीजी की विचारधारा आज भी देश में प्रासंगिक है। मितव्ययता, स्वच्छता, देशभक्ति, छुआछूत एवं विनम्रता का अभाव, राष्ट्रीय एकता जैसे सिद्धांत अंडमान-निकोबार जैसे स्थान पर पूर्णतया देखने को मिलते हैं—यह सभी गांधी के समय से ही देश को विरासत में मिले हैं। यह विचार डॉ. गोविन्दसिंह पंवार ने मुख्य अतिथि के रूप में गांधी भवन में आयोजित सर्वोदय विचार परीक्षा के प्रमाण-पत्र एवं पुरस्कार वितरण समारोह के अवसर पर व्यक्त किये। पंवार ने कहा कि किसी के मन को चोट न पहुंचाना भी अहिंसा है, सत्यम् वद को जीवन में अपनाकर शांति से रहें, झूठ से दूर रहें, विनम्र बनें।

कार्यक्रम का शुभारंभ हेना भट्टाचार्या ने सरस्वती वंदना से किया। इस अवसर पर मीरा संस्थान की संस्थापक छगन बहन की स्मृति में 47 केन्द्रों के विद्यार्थियों को प्रवेश व परिचय परीक्षा में सर्वोच्च अंक प्राप्त करने हेतु सत् साहित्य पुरस्कार के रूप में प्रदान किये।

कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए कुंदनमल जैन लोगों से कथनी व करनी में अंतर न रखने की अपील की। विशिष्ट अतिथि मीरा संस्थान की सचिव आशा बोथरा ने कहा कि युवा वही है जो युग को आगे ले जाये। स्वागत एवं कार्यक्रम का संचालन डॉ. भावेन्द्र शरद जैन ने किया। इस अवसर पर विभिन्न विद्यालयों के शिक्षक, छात्र-छात्राओं एवं उनके परिवारजनों की उपस्थिति उल्लेखनीय रही। **–डॉ. भावेन्द्र शरद जैन**

विनोबा जयंती मनायी गयी

दरभंगा। आचार्य विनोबा भावे के 119वां जन्म दिवस 11 सितंबर को भूदान किसान, सामाजिक कार्यकर्ताओं, स्वयंसेवी कर्मियों सहित ग्राम स्वराज्य अभियान समिति के प्रखंड सेवकों एवं जिला कर्मियों द्वारा जिला के समाहरणालय भवन में विशाल जयंती सभा का आयोजन किया गया। आयोजन की अध्यक्षता हृदय नारायण चौधरी ने की।

इस अवसर पर कश्मीर में प्रलयंकारी प्राकृतिक विपदा पर भगवान से प्रार्थना की गयी कि भगवान पीड़ित परिवारों को शीघ्र कष्ट से मुक्त करें। यह भी संकल्प लिया गया कि 1.25 लाख रुपये सहातार्थ इकट्ठा कर प्रधानमंत्री राहतकोष में भेजा जाय। **–हृदयनारायण चौधरी**

संपादक के नाम पत्र

सभी गांधीजनों के लिए

'सर्वोदय जगत' पत्रिका के नये कलेवर के लिए बधाई के साथ 'छपी प्रतियां 1400' पढ़कर अपनी असह्य पीड़ा भी प्रकट करना चाहता हूं। सवा अरब आबादी के राष्ट्रभाषा हिन्दी के क्षेत्र में, उसके सर्वोच्च विचार को पढ़ने-समझने के इच्छुक घटते-घटते 1400 रह जायं, इसमें गांधी विचार का कसूर माना जाय या गांधी विचार पर चलने वालों का? गांधी विचार-सर्वोदय तो हिंसा, घृणा से त्रस्त मानवता को शांति-प्रेम-समतायुक्त सुखी बनाने का मार्ग है। ऐसे उदीप्त मार्ग का सिमटता जाना, कसूर हम सबका है। पाठक के रूप में हमारा भी है। पाठक संख्या घटती जा रही है, देखते हुए भी हम शांत क्यों हैं? कम-से-कम दो नये पाठक/ग्राहक तो हम प्रत्येक बनायें ही। कृपा कर एक निवेदन इस दर्द के साथ निकाल दीजिए कि 30 जनवरी तक कम से कम 5 नये ग्राहक सभी बनायें। मैं स्वयं 10 से अधिक नये ग्राहक बनाऊंगा।

सर्वोदय संस्थाओं में आर्थिक तंगी तो रहती ही है, ऐसे ही 'सर्वोदय जगत' में भी हो सकती है। मगर मेरा निवेदन है कि विचारवान जनों के लिए आर्थिक कठिनाई तो प्रकृति की देन है। यह कठिनाई ही उन्हें अधिक सक्रियता और तेजस्विता प्रदान करती है। मिशन के लिए, महान उद्देश्य के लिए काम करने वालों का यह भूषण है, यदि समझ सकें वह स्वावलम्बी व परिश्रमी, मितव्ययी व सादगी प्रिय, सबका प्रिय उत्साह से भरा होता है।

'सर्वोदय जगत' कार्यालय के सभी साथी भी यह विचार रखेंगे तो वर्षों से काम करते रहने की शिथिलता दूर होकर 'हम विश्वशांति, समता और सरलता के वाहक हैं' यह दिव्य शक्ति और ओज से पूर्ण होकर सभी ग्राहकों से जीवित सम्पर्क रखेंगे। मेघदूत पोस्टकार्ड 25 पैसे के आते हैं, प्रतिदिन 20 पोस्टकार्ड, 1400 ग्राहकों को 70 दिनों में भेज सकते हैं।

लेखकों से भी पाण्डित्य नहीं, सर्वोदय विचार को सरल सुरुचिपूर्ण ढंग अपनाने का निवेदन है। विद्यार्थियों के लिए भी कुछ हो, कुछ प्रतियोगिताएं भी महिला व बाल उत्थान आदि कार्यक्रमों के विज्ञापन दिये जा सकते हैं। उन्हें लिखा जाय। भूदान दिवस, 15 अगस्त, 11 सितम्बर, 2 अक्टूबर, होली, दिवाली आदि शुभ अवसरों पर सर्वोदय प्रेमियों से शुभकामनाएं (सशुल्क) आमंत्रित की जा सकती है।

मैं 87 वर्ष का जीर्ण शरीर, 8 वर्षों से कैंसर से संघर्षरत, असमर्थ फिर भी 2 अक्टूबर तक पांच और 30 जनवरी तक 10 नये ग्राहक बनाने का वायदा करता हूं।

–मानसिंह रावत, सर्वोदय सेवक, गढ़वाल

श्रद्धेय,

आपके सुझाव के लिए आभारी हूं। आपके परामर्श के अनुरूप कदम उठाने का प्रयास करूंगा। हाथ से लिखकर पोस्टकार्ड भेजना 2 अक्टूबर से प्रारम्भ कर रहा हूं। आपकी जिजीविषा को प्रणाम है। आपके सुझाव हमें मिलते रहे। आपकी कुशलता की कामना है। **–का. सं.**

आमंत्रण

सर्व सेवा संघ द्वारा आयोजित 'महिला विचार बैठक' 12,13,14 नवंबर वर्धा।

उद्देश्य : * महिला संगठन का सुदृढ़ीकरण, * सामयिक कार्यक्रमों की खोज, * सभी वर्ग की महिलाओं में गांधी विचार की समझ बढ़ाने का प्रयास, * महिलाओं में नागरिकत्व की भावना बढ़ाना। प्रिय बहनो, आपको आमंत्रण मिला हो या न मिला हो, इस सूचना को कृपया आमंत्रण समझ बैठक में जरूर भाग लें। **–शोभा शिराढोणकर,** मंत्री

और अंततः एक दस्तावेज

गांधी-गोलवलकर वार्ता : एक आईना

❑ अशोक मोती

दिल्ली, वर्ष 1947 का आखिरी माह इस देश के इतिहास का एक आईना है, जो हमें अब भी डरा जाता है। इस देश की राजधानी ने ऐसा गम या उदासी कभी नहीं झेली थी। मुसलमानों की जानमाल को दिल्ली प्रशासन ने हत्यारों को सुपुर्द कर दिया था। सिर्फ गांधी की अकेली आवाज गूंजी—''इस आग को बुझाओ, नहीं तो दोनों इसमें भस्म हो जाओगे।'' उन्होंने रूँधे गले से ईश्वर से प्रार्थना की—''हे ईश्वर! इस ज्वाला को शांत कर, नहीं तो मुझे भी इसमें भस्म होने दे। मैं इसका साक्षी नहीं बनना चाहता।''

इसके बावजूद दिल्ली में चारों ओर यह अफवाह थी कि इस अत्यन्त दुखदायी मुहिम का संचालन स्वयं सेवक संघ के सर संघ चालक श्री गोलवलकर कर रहे हैं।

जब अफवाह बहुत तेज हुई तो संघ सर चालक श्री गोलवलकर गांधीजी से मिलने गये।

गांधी—क्या यह अफवाह सच है कि दिल्ली और हिन्दुस्तान के दूसरे शहरों में मुसलमानों का जो कत्लेआम हो रहा है, इसके पीछे राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का हाथ है?

श्री गोलवलकर—(आरोप का खंडन करते हुए) हमारा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का संगठन 'हिन्दू धर्म' की रक्षा के लिए है—मुसलमानों की हत्या के लिए नहीं है। हम किसी के दुश्मन नहीं हैं। हम अमन और शांति चाहते हैं।

गांधी—यदि आपकी बात सच है तो अपके खिलाफ जो इलजाम लगाये जाते हैं उनसे इनकार करते हुए आप, दिल्ली में जिस तरह मुसलमानों को सताया और कत्ल किया जा रहा है उसकी खुले स्वर में निन्दा करें।

श्री गोलवलकर एवं साथी—आपसे हमने जो कुछ कहा है उस आधार पर आप खुद ऐसा बयान दे सकते हैं।

गांधी—''मैं यह करूंगा पर यह कहीं बेहतर होगा कि जनता खुद आप लोगों के मुंह से यह खंडन सुने।'' *(दी लास्ट फेज, प्यारेलाल, भाग-2, पृ. 439)*

गांधीजी के दल के एक साथी ने कहा—''बापू! राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के लोगों ने यहां के शरणार्थी शिविर में बहुत उम्दा काम किया है। संघ के स्वयं सेवकों ने अनुशासन, हिम्मत और कड़ी मेहनत का परिचय दिया है।

गांधी—''यह क्यों भूलते हो कि हिटलर के बागियों और मुसोलिनी के फासिस्टों ने भी कड़े अनुशासन, हिम्मत और सख्त मेहनत का परिचय दिया था। सवाल अनुशासन, हिम्मत और सख्त मेहनत का नहीं है, सवाल है राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ तानाशाही तरीके अपनाने वाली एक साम्प्रदायिक संगठन है या नहीं?

कुछ ही दिनों बाद राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के नेता गांधीजी को अपने स्वयं सेवकों की एक रैली में भंगी बस्ती ले गये। गांधीजी ने गोलवलकर की उस पुस्तक को पढ़ी थी, जिसमें इस बात पर जोर दिया गया था कि 'हिन्दू इस क्षेत्र के असली मूल निवासी हैं। ये कहीं बाहर से नहीं आये। श्री गोलवलकर के अनुसार लोकमान्य तिलक की यह मान्यता गलत है कि आर्यों का मूल निवास उत्तरी ध्रुव है और आर्य पश्चिमोत्तर के रास्ते भारत में आये। श्री गोलवलकर की मान्यता के अनुसार आर्य बाहर से भारतवर्ष में नहीं आए बल्कि 'उत्तरी ध्रुव' ही भारत से बाहर चला गया। वेदों की रचना के समय उत्तरी ध्रुव भारत के भीतर बिहार और उड़ीसा में था। *(वी आर आवर नेशनहुड डिफाइन्ड, एम एस गोलवलकर, पृ. 13)*

श्री गोलवलकर कहते हैं—

''भारत सिर्फ हिन्दुओं का देश है और जो लोग हिन्दू और कल्चर में नहीं घुलमिल सके वे लोग विदेशी हैं और विदेशी अल्पसंख्यकों की हैसियत से ही वे यहां रह सकते हैं। कांग्रेस के घातक असर की वजह से पहली बार यह खयाल फैला कि हमारा राष्ट्र ऐसे लोगों से मिलकर बना है जो देश में रहते हैं। हमने अपने पुराने हमलावरों और दुश्मनों को साथ मिलाकर, एक विजातीय शब्द 'इंडिया' के झंडे के नीचे संघर्ष करना चाहा।...'जनतांत्रिक राज्य' की मृग-मरीचिका के पीछे हमने अपनी असली हिन्दू राष्ट्रवादिता को पूरी तरह आंखों से ओझल कर दिया।'' (वी आर आवर नेशनहुड डिफाइंड, वी एम. एस. गोलवलकर, पृष्ठ 19-20)

श्री गोलवलकर—(अपनी एक रैली में गांधीजी का स्वागत करते हुए कहा) गांधीजी हिन्दू धर्म की एक महान आत्मा हैं।''

गांधी—(उत्तर देते हुए कहा) ''जबकि मुझे हिन्दू होने का सचमुच गर्व है मेरा हिन्दू धर्म न तो अनुदार है, न असहिष्णु है और न न्यारा है। जैसा मैं हिन्दू धर्म को जानता हूं हिन्दू धर्म बाकी सब धर्मों में जो अच्छाइयां हैं उन्हें अपने अंदर आत्मसात् करता है। यदि हिन्दुओं का यह विश्वास है कि हिन्दुस्तान में कोई गैर हिन्दू बराबरी और इज्जत के साथ नहीं रह सकता और मुसलमानों को, अगर हिन्दुस्तान में रहना चाहते हैं, तो घटिया हैसियत कुबूल करनी पड़ेगी और मगर मुसलमान यह समझते हैं कि पाकिस्तान में सिर्फ मातहत जाति की हैसियत से ही रह सकते हैं तो इसका मतलब यह है कि हिन्दू धर्म और इसलाम दोनों का खात्मा हो जायेगा। मुझे आपके इस आश्वासन से खुशी है कि आपकी नीति इसलाम विरोधी नहीं है। लेकिन मैं आपको आगाह करना चाहता हूं कि अगर यह इलजाम सच है कि आपका संगठन मुसलमानों के कत्ल के लिए जिम्मेवार है तो आपके संगठन का बुरी तरह अंत होगा।'' *(महात्मा गांधी दी लास्ट फेज, प्यारेलाल, भाग-1, पृ. 440-41)*

बाद में—आर एस एस के प्रति क्या नीति अपनायी जाय इस पर नेहरू (प्रधानमंत्री) और पटेल (गृहमंत्री) दोनों में मतभेद थे। सरदार पटेल इन्हें 'गुमराह देशभक्त' की संज्ञा दी—''कुछ कांग्रेसी प्रशासक चाहते हैं कि आर एस एस को डंडे के जोर पर कुचल दिया जाय, लेकिन आज डंडे के बल पर किसी संगठन को नहीं कुचल सकते। आखिर आर एस एस वाले कोई चोर डाकू तो नहीं हैं। वे देशभक्त हैं। उन्हें अपने देश से प्यार है। सिर्फ उनका तरीका गुमराही का है।'' *(जनवरी 1948 को लखनऊ में सरदार पटेल का भाषण)*

''...सरदार पटेल का यह भाषण बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण था। बाद में जब आर एस एस वाले बेनकाब होकर अपना असली रंग दिखाने लगे तो सरदार पटेल हैरान रह गये। उन्होंने फौरन आर एस एस के खिलाफ कदम उठाया लेकिन तब, जब सारा देश राष्ट्रपिता के गम में मातम मना रहा था।''

राष्ट्रपिता अपने ही एक गुमराह पुत्र की पिस्तौल की गोलियों से अनन्त निद्रा में लीन हो गये। बलिदान के दो दिन पहले गांधी ने जो कहा था—वह सच हो गया। ''मेरे लिए इससे प्यारी चीज क्या हो सकती है कि मैं हँसते-हँसते गोलियों की बौछार का सामना कर सकूं। भगवान ने उन्हें यह वरदान दे दिया।'' *(विश्व निर्मित शुक्रवार', प्यारेलाल, विश्वव्यापी, फरवरी-मार्च 1948, पृ. 113)* ❑

जे युद्धे भाई के मारे भाई

❑ गुरुदेव रविन्द्रनाथ ठाकुर

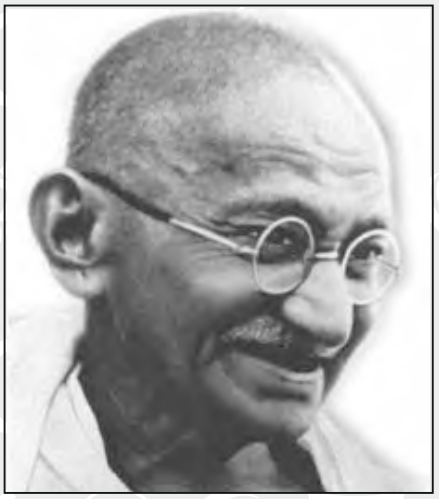

2 नवंबर, 1947 के 'हरिजन सेवक' में गुरुदेव रविन्द्रनाथ ठाकुर की यह कविता छपी थी। कविता के साथ गांधीजी अपनी टिप्पणी में लिखते हैं—'साम्प्रदायिकता के विरुद्ध गुरुदेव की यह कविता एक बंगाली भाई ने मेरे पास भेजी है। उसे मूल, बंगला में हिन्दुस्तानी अर्थ के साथ दे रहा हूं।' **–का. सं.**

जे युद्धे भाई के मारे भाई
से लड़ाई ईश्वरेर विरुद्ध लड़ाई
जे करे धर्मेर नामे विद्वेष संचित,
ईश्वर के अर्ध्य हते से करे वंचित।
जे आंधारे भाई के देखते नाहिपाय,
से आंधारे अंध नाहि देखे आपनाय,
ईश्वरेर हास्यमुख देखिबारे पाइ,
जे आलोके भाईके देखिते पाय भाइ।
ईश्वर प्रणामे तबे हात जोड़ हय,
जखन भाइयेर प्रेमे मिलाइ हृदय।

: अर्थ :

वह लड़ाई ईश्वर के खिलाफ लड़ाई है,
जिसमें भाई भाई को मारता है।
जो धर्म के नाम पर दुश्मनी पालता है
वह भगवान को अर्ध्य से वंचित करता है।
जिस अंधेरे में भाई भाई को नहीं देख सकता,
उस अंधेरे का अंधा तो स्वयं अपने को ही नहीं देखता।
जिस उजाले में भाई भाई को देख सकता है,
उसमें ही ईश्वर का हंसता हुआ चेहरा दिखाई पड़ सकता है।
जब भाई के प्रेम में दिल भिंग जाता है,
तब अपने आप ईश्वर को प्रणाम करने के लिए हाथ जुड़ जाते हैं।

नई दिल्ली, 23-10'47 **–मोहनदास करमचंद गांधी**

साम्प्रदायिकता के विरुद्ध कविता

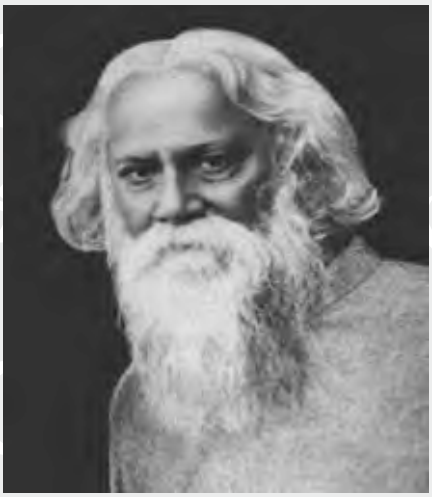

गांधीजी के महाप्रयाण पर

महामृत्युंजय!

❑ गुरुदेव रविन्द्रनाथ ठाकुर

जब समूह में से एक व्यक्ति,
यकायक खड़ा होकर
नेता की ओर ऊंगली उठाकर बोला–
तू ने हमें धोखा दिया है।
तू हमें कहां ले जा रहा है?
जन समूह की नफरत तेज होती गई!
एक साहसी ने उठकर
अचानक नेता के ऊपर चोट की;
चोट पर चोट की।
नेता की प्राणहीन देह धरती पर गिर पड़ी।
अंधकार की समाप्ति पर,
प्रकाश की किरणें
मृत, नेता की ललाट को छूती है,
स्त्रियां फूट फूट कर रोती हैं
पुरुष ग्लानि से मुंह ढंक लेते हैं।
लोग एक दूसरे से पूछते हैं–
अब कौन हमारा मार्गदर्शन करेगा?
एक आवाज आती है
वही रास्ता बतावेगा हमने
जिसकी हत्या की है,
एक सिर झुकाए,
चुप रहते हैं।
स्वर फिर उठता है–संशय के कारण हमने उसे
अस्वीकार किया
क्रोध के कारण हमने उसकी हत्या की!
अब हमें–
प्रेम से, श्रद्धा से,
उसका मार्गदर्शन स्वीकार करना होगा, क्योंकि
मृत्यु द्वारा वह हमारी जाति के जीवन में
संजीवित हुआ है।
वह महामृत्युंजय है।''
सब खड़े हो गये,
मिलकर समवेत स्वर में बोले–
''जय! महात्मा की जय!''

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार, कार्य.संपादक : अशोक मोती। छपी प्रतियाँ : 1500